नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

# बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 3 अंक 11
दिसम्बर 2001 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

## भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला

# यह समय अन्धराष्ट्रवादी उन्माद में बहने का नहीं तर्क और विवेक से निकली राहों पर आगे बढ़ने का है

**सम्पादक**

लखनऊ। किसी भी तर्क के आधार पर विगत 13 दिसम्बर को संसद पर हुए हमले को न तो बुद्धिमानी भरा कदम कहा जा सकता है और न ही इसे जायज कहा जा सकता है। लेकिन इसके बहाने समूचा शासक वर्ग जिस तरह देशभक्ति और अन्धराष्ट्रवाद का उन्माद पैदा करने में जुट गया है वह देश के हर विवेकवान नागरिक के लिए गहरी चिन्ता का विषय है। यह समय अन्धराष्ट्रवादी भावनाओं में बहने का नहीं बल्कि संजीदगी और विवेक के साथ उन सवालों पर सोचने का है जिसने देश के भीतर ऐसे हालात पैदा किये हैं। इसलिए हम आम जनता के प्रबुद्ध, विवेकवान तबकों से कुछ सवालों पर गहराई के साथ सोचने की अपील करते हैं।

**आखिर क्या कारण है कि आतंकवाद पिछले एक दशक के दौरान ही एक विश्वव्यापी रुझान के रूप में उभरकर सामने आया है? आखिर कहां हैं इसकी जड़ें? इसकी पड़ताल आज बेहद जरूरी है। साथ ही इसकी समझ दुरुस्त करना भी उतना ही ज़रूरी है कि क्या जालिम हुकूमतों के खिलाफ संगठित सशस्त्र जनप्रतिरोध की कार्रवाइयों को भी आतंकवाद का नाम दे दिया जाना चाहिए? क्या इन दोनों किस्म की कार्रवाइयों के बीच आज की दुनिया में कोई फर्क नहीं दिया जाना चाहिए जैसा कि अमेरिकी साम्राज्यवाद की अगुवाई में एक चलन बनता जा रहा है।**

इतिहास की ज़रा सी भी समझ रखने वाला कोई भी व्यक्ति पिछली शताब्दी के सातवें दशक में चले राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को आतंकवादी कार्रवाइयां नहीं कह सकता। ये संघर्ष ज्यादातर हथियारबन्द थे। इसी दौर में समूचे यूरोप में उठे उग्र नारीवादी आन्दोलन और अमेरिका में काली आबादी के आन्दोलन को क्या आतंकवादी कार्रवाइयां कहा जाना चाहिए। अल्जीरिया और ट्यूनीशिया की सशस्त्र क्रान्तियों को कोई नासमझ या अमेरिकी हुक्मरानों जैसी मक्कार जमातें ही आतंकवादी कार्रवाइयों का नाम देंगी।

इसी तरह आठवें दशक में सम्पन्न ईरान व निकारागुआ की क्रान्तियों को भी कोई आतंकवादी हरकतें नहीं कह सकता। यह वह दौर था जब उपनिवेशवाद की गुलामी से आजाद हुए भारत जैसे उन तमाम देशों में भी जनता के जुझारू संघर्ष उठ खड़े हुए थे जहां के शासकों की नीतियां और चरित्र आम जनता के सामने उजागर होने शुरू हो चुके थे। ये सभी संघर्ष सत्ता के खिलाफ केन्द्रित थे लेकिन सिर्फ सत्ता के विरोध के नाते उन्हें आतंकवादी संघर्ष नहीं कहा गया।

लेकिन यह दशक खत्म होते-होते दुनिया की फिजां बदलने लगी थी। नवां दशक शुरू होते-होते दुनिया के पैमाने पर जनसंघर्षों की धारा कमजोर पड़ने लगती है। पुराने किस्म के छापामार संघर्ष विघटित होने लगते हैं जैसा कि अलसल्वाडोर में एफ.एम.एल.एन. और वहां के शासकों के बीच हुए समझौते या निकारागुआ में पूंजीवादी जनतंत्र के विभ्रमों का शिकार होकर सान्दिनिस्ता की सत्ता के ढहने के रूप में दिखायी देता है। इसी दशक में इस विभ्रम के पैदा होने की शुरुआत भी दिखती है कि तीसरी दुनिया का शासक वर्ग साम्राज्यवादी मुल्कों का दलाल जैसा चरित्र अख्तियार करता जा रहा है।

यही रूझानें-प्रवृत्तियां और विभ्रम पिछली सदी के आखिरी दशक में पहुंचकर एक नयी मंजिल

(पेज 10 पर जारी)

## 'पोटो' का दानवी खेल शुरू, पुलिसिया मनमानापन और बढ़ा

# इस काले कानून को दफ्न करने के लिए आगे आओ!

**सम्पादकीय डेस्क से**

जम्मू-कश्मीर पुलिस ने श्रीनगर के एक कालीन बुनकर गुलाम मुहम्मद डर को 'आतंकवाद निरोधक अध्यादेश' (पोटो) के तहत गिरफ्तार कर लिया, और घर के सभी सदस्यों को बाहर निकाल कर घर को सील कर दिया। गुलाम मुहम्मद पर आरोप था कि कुछ समय पूर्व मुठभेड़ में मारे गये एक आतंकवादी के पास से इसके घर का पता बरामद हुआ था। घर की जब्ती पर पुलिस का तर्क था कि पोटो के एक प्रावधान के तहत वह ऐसी किसी भी सम्पत्ति को जब्त कर सकती है जिसके बारे में उसे संदेह हो कि वह किसी आतंकवादी कार्रवाई के जरिए मिली धनराशि से बनाई गयी हो।

गुलाम मुहम्मद के परिवार वालों के अनुसार यह सत्तर साल पुराना पुश्तैनी मकान है, जिसका दस वर्ष पूर्व गहने आदि बेचकर विस्तार किया गया था। मारा गया आतंकवादी चार माह पूर्व बतौर फोटोग्राफर यहां रहता था। उसके पते-ठिकाने का कोई इल्म नहीं है। पुलिस की इस कार्रवाई के बाद शहर में हुए व्यापक विरोध प्रदर्शनों और नागरिक अधिकार संगठनों के हस्तक्षेप के बाद फिलहाल घर से पुलिस को अपना कब्जा हटाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

यह है खतरनाक व जन विरोधी 'आतंकवाद निरोधक अध्यादेश' (पोटो) के कानूनी रूप के पहले की एक बानगी जो व्यापक विरोध प्रदर्शनों के बाद समाचार बन सका। हो-हल्ला मचने के बाद जम्मू-कश्मीर की राज्य सरकार यह कहकर अपनी

(पेज 4 पर जारी)

## पी.डब्ल्यू.जी. और एम.सी.सी. पर 'पोटो' के तहत प्रतिबन्ध

# सरकार ने साबित किया कि आतंकवाद नहीं जनसंघर्ष ही असली निशाना है

**(बिगुल प्रतिनिधि)**

दिल्ली। पीपुल्स वार ग्रुप, माओवादी कम्युनिस्ट सेण्टर (एम.सी.सी.) इनके सभी मोर्चा संगठनों और सहयोगियों पर आतंकवाद निरोधक अध्यादेश (पोटो) के तहत प्रतिबन्ध लगाकर सत्तारूढ़ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सरकार ने अपने इसली इरादों का खुला इजहार कर दिया है। अब किसी को भ्रम नहीं रहना चाहिए कि पोटो के निशाने पर आतंकवाद है या जनता के संघर्ष।

इन संगठनों की विचारधारा और कार्रवाइयों से कोई भले ही असहमत हो, लेकिन इन्हें आतंकवादी घोषित कर इन पर प्रतिबन्ध लगाना सरकार की असली मंशा को तो उजागर करना ही है, साथ ही यह खुद पूंजीवादी व्यवस्था के अपने ही बनाये हुए खेल के नियमों का ही खुला उल्लंघन है, यानी ग़ैरकानूनी है। पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (PUDR) जैसे संगठनों और कई वरिष्ठ कानून विशेषज्ञों ने इसे ग़ैरकानूनी बताया है और सरकार से प्रतिबन्ध उठाने की मांग की है।

पी.यू.डी.आर. ने प्रेस को जारी अपने बयान में कहा है कि सिर्फ "संविधान में विश्वास की कमी और

(पेज 4 पर जारी)

## भीतर के पन्नों पर

1. नेपाल की ओर से अन्तराष्ट्रीय समुदाय से अपील -पृ. 3
2. ईस्टर के मज़दूर आन्दोलन की राह पर - पृ. 3
3. एनरॉन का दिवाला निकला -पृ. 5
4. बेहद खतरनाक परिस्थितियों में काम कर रहे हैं यूरेनियम खान मज़दूर - पृ. 5
5. पार्टी की बुनियादी समझदारी - पृ. 7
6. दक्षिण एशिया में साम्राज्यवादी दखलन्दाजी -पृ. 8
7. बोझ से छुटकारा पाओ और मशीनरी चालू करो -माओ त्से-तुङ -पृ. 9

# नेपाल में आपातकाल और भारतीय हस्तक्षेप का विरोध करो!

**(बिगुल प्रतिनिधि)**

दिल्ली। नेपाल में माओवादी क्रान्तिकारियों के साथ चल रही वार्ताओं को अचानक भंग कर शेर बहादुर देउबा सरकार ने आपातकाल लगाने के बाद आतंकवाद के दमन के नाम पर नेपाली जनता पर बर्बर दमन-चक्र चला रखा है। देश के सभी न्यायप्रिय और जनतंत्रप्रेमी नागरिकों के लिए इससे भी बड़ी चिन्ता का विषय यह है कि भारत सरकार ने न केवल नेपाल में आपातकाल को पूरा समर्थन दिया है बल्कि नेपाल सरकार को भारी मात्रा में हथियारों की आपूर्ति कर नेपाल के आन्तरिक मामलों में अपनी टांग घुसा दी है।

देश के कई "राष्ट्रीय" समाचार पत्रों में इस बारे में पूरे ब्योरे के साथ खबरें छप चुकी हैं कि भारत ने "आतंकवाद" को कुचलने में मदद करने के लिए अब तक दो हेलिकॉप्टर और भारी मात्रा में फौजी साजो-सामान नेपाल भेजा है। एक अखबार ने तो यहां तक खबर दी कि नेपाल में पूर्वी उत्तर प्रदेश की सरहदों के रास्तों सैनिक भी भेजे गये हैं। हालांकि सरकार ने सैनिक भेजे जाने की खबर का खण्डन किया है लेकिन हथियारों को भेजने का खण्डन न कर इस बारे में छपी खबरों को पुष्ट कर दिया है।

किसी भी देश की जनता को यह तय करने का अधिकार है कि उस देश में कैसी सरकार बने या कैसी शासन व्यवस्था लागू हो। किसी भी दूसरे देश को इसमें टांग अड़ाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। लेकिन भारत सरकार नेपाल के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर अपने उस घोषित रुख का खुला उल्लंघन कर रही है जिसका वह ढिंढोरा पीटते नहीं थकती। लगता है भारत सरकार श्रीलंका में शान्ति सेना भेजने के अनुभव को भूल चुकी है और अमेरिकी साम्राज्यवाद की शह पर नेपाल की जनता का दमन करने

(पेज 10 पर जारी)

# आपस की बात

## मालिक मालामाल मज़दूर बेहाल

मज़दूर अखबार 'बिगुल' के माध्यम से मैं अपनी फैक्टरी के बारे में और मज़दूर भाईयों को भी बताना चाहता हूं। हमारी फैक्टरी लुधियाना के इण्डस्ट्रियल एरिया-बी में स्थित है। गुजरांवाला फैक्टरी के नाम से इसको जाना जाता है। इसका असली नाम जी.पी.प्रोडक्ट्स लुधियाना है। यहां पर साइकिल के पुरजे बनाये जाते हैं। यह फैक्टरी 1989 में लगाई गयी थी। मैं इसके शुरुआती मज़दूरों में से एक हूं। इन बारह सालों में मालिक कहां से कहां पहुंच गये और हम मज़दूर आज भी वैसे ही बदहाल हैं।

इस फैक्टरी में मज़दूरों की तनख्वाह 1000 से 2000 रुपये के बीच है। फैक्टरी में लगभग 150 मज़दूर हैं, जिनमें 15 तो बच्चे हैं। बच्चों से तो 800-900 रुपये प्रति माह पर ही काम लिया जा रहा है। सिर्फ 25 मज़दूर ही पक्के हैं। इसके अलावा फैक्टरी में ज्यादातर काम तो ठेके पर ही होता है। जैसे कि घंटी डिपार्टमेण्ट में फिटिंग का काम ठेके पर होता है। फैक्टरी में तीन डिपार्टमेण्ट हैं। ये हैं – प्रेस, घंटी तथा बराईट डिपार्टमेण्ट।

न तो बोनस और न ही ई.एस.आई. की सुविधा इस फैक्टरी में है, लुधियाना की तमाम फैक्टरियों की तरह पुराने कुशल मज़दूरों को हटाकर उनकी जगह कम तनख्वाह पर काम करने वाले नये मज़दूरों को रखने का चलन यहां पर भी है। हमारे यहां कोई यूनियन नहीं है। मज़दूरों से दस से बारह घंटे काम कराया जाता है। ओवर टाइम का कोई भुगतान नहीं किया जाता है। मालिक अक्सर छोटी-छोटी बात पर मज़दूरों को मां-बहन की गाली देते रहते हैं और कई बार तो मारपीट करते हैं। मालिक जब चाहें तब मज़दूरों को काम से निकाल देते हैं।

फैक्टरी में अन्दर ही तीन रिहाइशी कमरे हैं, जहां 35-40 मजदूर रहते हैं। इन मज़दूरों को जब मालिक चाहते हैं, तब काम पर बुला लेते हैं। मज़दूरों का शोषण-उत्पीड़न करने के तरीके मालिकों के पास बहुत है। फैक्टरी के सभी डिपार्टमेण्टों में वीडियों कैमरे लगे हुए हैं, जिससे मालिक अपने दफ्तर में बैठे-बैठे ही मज़दूरों की एक-एक हरकत पर नजर रखता है। फैक्टरी में सुरक्षा इंतजाम बहुत बुरे हैं जिसके कारण मजदूर आये दिन हादसों का शिकार होते रहते हैं।

**एक मज़दूर**
**लुधियाना (पंजाब)**

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'बिगुल' एक संग्रहणीयपूर्ण पत्र के साथ-साथ सजग पत्र है, प्रचारक है। मेहनतकश के लिए यह पत्र अति महत्वपूर्ण है। 'बिगुल' से मेरा सम्बन्ध तकरीबन 4-5 माह पूर्व बना तथा मैं इसका अब एक अच्छा पाठक बना हूं। थोड़ी समझ के आधार पर मैंने एक कविता का सृजन किया जो कि आशा व्यक्त करता हूं कि उचित लगेगा।

### जागो संघर्ष करो

क्यों चिन्तन में लगे हो? संभव है अपना स्वराज।
क्यों बिछुड़ तुम खड़े हो? पग पग दो हमारा साथ।।
दिवा स्वप्न दिखा कर तुमको, रिक्त ही कर रखा है।
तुमको तुम्हारे अपनों के विरुद्ध लिप्त ही कर रखा है।।
क्यों नहीं तुम समझ रहे? क्रान्ति का उद्घोष करो।
क्यों नहीं तुम भड़क रहे? समय नहीं बेहोश रहो।।
कार्य की अधिकता में, पिसते सदैव तुम आये हो।
हुक्मरानों की सफलता में, घिसते सदैव तुम आये हो।।
क्यों नहीं बिगुल बजाते हो तुम? अपनी कौर के लिए।
क्यों नहीं शूल सजाते हो तुम? उनकी तोड़ के लिए।।
विपरीत है संघर्ष न करो, पग तले वे रखते हैं।
विपरीत है अभय न बनो, तुम्हारे सिर पर चढ़ते हैं।।
क्यों नहीं पूंजीपति की तुम? डंका आज बजाते हो।
क्यों नहीं स्वामी भक्ति की तुम? ऐसा बोझ हटाते हो।।
वराजिश के फलरूप तुम्हारा, क्या सपना आज साकार है।
तुम वहीं और मालिक के पास, बंगला, मोटर, कार है।।
क्यों नहीं हक में लड़ते हो? क्लिजोई में दबा देंगे।
क्यों नहीं लड़ाई निर्भय करते हो? वे छंटनी कर भगा देंगे।।
दमन करो उनकी ये नीति, जागो मेरा आह्वान है।
आगाज करो अब अपनी रीति, संघर्ष ही जीवन का नाम है।।

**खेमकरन साहनी 'सोमन'**
**रुद्रपुर,**
**जिला – ऊधमसिंहनगर,**
**उत्तरांचल**

## एक मजदूर दूसरे मज़दूर के खिलाफ क्यों है?

लुधियाना शहर के दशमेशनगर और राधास्वामी रोड के अन्दर रहने वाले हम मजदूरों में से ज्यादातर एक ही जिला के रहने वाले परदेशी मजदूर हैं। हम सब मज़दूरी करते हैं। फिर भी हममें से कुछ मालिकों की चुगलखोरी करते हैं। दूसरे मज़दूर की पेट में लात मारते हैं। मालिक से शिकायत कर काम से निकलवा देते हैं। कमरा खाली करवा देते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे मज़दूर भाई ही ऐसा क्यों करते हैं? हम सबको आपस में ऐसा नहीं करना चाहिये क्योंकि हम रोटी की तलाश में परदेश में आये हैं। हमें आपस में मिलजुल कर रहना चाहिये।

**विजय कुमार पटेल, लुधियाना**

**प्रिय साथी,**

**आपने जो लिखा है, वह सच्चाई है। पर यही अंतिम सच नहीं है। नारकीय हालातों में रह रहे मज़दूरों की बस्तियों में जहां एक तरफ यह सच्चाई है, तो दूसरी तरफ यह भी सच्चाई है कि इन्हीं मजदूर बस्तियों में इंसानियत और जिन्दगी बची हुई है। जरा उन कंक्रीट के जंगलों को देखिये जहां "सभ्य जन" रहते हैं, उन महलों के अंदर झांकिये जहां मुनाफाखोर रहते हैं। वहां सच्चाई पर मखमल के परदे जरूर टंगे हैं, पर वहां जिन्दगी नहीं है, इन्सानियत नहीं है। अब जरा मौजूदा हालात पर गौर करें। इस पूंजीवादी व्यवस्था ने मेहनत करने वालों को नरक का जीवन जीने को मजबूर किया है। उसे शिक्षा से वंचित किया है, उसे कला- साहित्य- संस्कृति- इतिहास-दर्शन आदि से काट रखा है। इस अन्याय और जुल्म पर टिके पूंजीवादी निजाम की यह साजिश है कि एक मजदूर और एक पशु में कोई अन्तर न रहे, एक मजदूर कुछ सोच न पाये, अपने दुख-दर्द, अपने हालातों के कारणों को न तलाश पाये। जब उसे गुस्सा आये तो उसे अपने भाइयों पर उतारे, अपने ही साथियों का गला काटे, इस लुटेरी व्यवस्था ने मज़दूर की आत्मा को कुचलने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, लेकिन मज़दूर की आत्मा को कुचला नहीं जा सका। उसे पशु नहीं बनाया जा सका। ऐसा इसलिये नहीं हो पाया कि वह भले ही सब चीजों से कट गया हो, किन्तु श्रम से जुड़ा रहा। फिर भी पूंजीपतियों की साजिशों का असर मजदूर वर्ग के एक हिस्से पर पड़ा, जिसका जिक्र आपने अपने पत्र में किया है। मज़दूर आन्दोलन जब कमजोर होता है, तब यह असर बढ़ जाता है। मजदूर वर्ग की विचारधारा और उसकी संस्कृति पर मज़दूरों की पकड़ कमजोर पड़ती है, तो पूंजीपति वर्ग के पतनशील विचार और संस्कृति मज़दूरों पर प्रभाव डालते हैं। इससे निबटने का एकमात्र उपाय है – मज़दूरों के बीच के सच्चे, जुझारू, सोचने-समझने वाले मज़दूर व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच में मज़दूर वर्ग की विचारधारा और उसकी सही सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करें। उनको जगायें और संगठित करें। मज़दूर आन्दोलन को नई गति प्रदान करें। 'बिगुल' अखबार और 'बिगुल' से जुड़ी टीम इस कोशिश में लगी हुई है किन्तु यह कोशिश तभी कामयाब होगी, जब इसमें ज्यादा से ज्यादा मजदूर साथियों की सक्रिय भागीदारी होगी।**

**● सम्पादक**

### वार्षिक सदस्यों के लिए सूचना

पाठकों से निवेदन है कि सदस्यता राशि भेजते समय मनीआर्डर फार्म पर अपना नाम व पता लिखना न भूलें। अक्सर हमें ऐसे मनीआर्डर मिल रहे हैं जिनमें राशि भेजने वाले का नाम और पता नहीं होता है। वे सदस्य जिन्हें राशि भेजे जाने के बाद भी 'बिगुल' प्राप्त नहीं हो रहा है वे अपना नाम और पता लिखकर बिगुल कार्यालय को भेजें।

-व्यवस्थापक

### बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भुजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

### बिगुल यहां से प्राप्त करें

● शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ ● मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुर (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ** ● जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ● विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ● विश्वनाथ मिश्र, तिवानल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर ● जनचेतना, डी 68, निशातगंज, **लखनऊ** ● जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8.30) ● राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ● विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ● रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ● रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ● प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ● राजीव वर्मा, स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ● राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र ● सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, **दिल्ली** ● ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, **दिल्ली** ● नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ● डी. के. सचान, एस.एच.- 272, शास्त्रीनगर **गाजियाबाद** ● सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, **बोकारो इस्पातनगर, बोकारो** ● गणपतलाल, ग्राम कांजी रसूलपुर, पो.-तेघड़ा, **बेगूसराय** ● पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ● समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आज़ाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ● विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,जबलपुर ● नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा ● पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ● सुखविंदर द्वारा कौ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ● राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, **सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग** ● बुक मार्क, 6, **बंकिम चटर्जी** स्ट्रीट, **कलकत्ता** ● शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया नेपाल** ● विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, **नेपाल** ● विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्युठान राप्ती अंचल ● विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, **लुम्बिनी**, नेपाल ● लक्ष्मी नारायण मिश्र, 853, हिरनमगरी, सेक्टर 4, पूजानगर, **उदयपुर** (राज.)

# नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) और संयुक्त क्रान्तिकारी जन परिषद, नेपाल की ओर से अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से अपील!

**नेपाल में आतंकवाद को कुचलने के नाम नेपाल सरकार द्वारा पिछले 26 नवम्बर 2001 को आपात की घोषणा के बाद यह अपील पिछले 3 दिसम्बर 2001 को जारी की गयी थी। इसकी प्रतियां संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति, यूरोपीय संघ के अध्यक्ष, भारत के प्रधानमंत्री और चीन के राष्ट्रपति को भेजी गयी हैं। नेपाल के ताजा हालात की सच्चाइयों के बारे में 'बिगुल' के पाठकों को अवगत कराने के लिए अंग्रेजी में लिखे पत्र का हिन्दी अनुवाद हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।**
**– सम्पादक।**

श्रीमान,

हम, नेपाल की दो करोड़ चौंतीस लाख जनता के सच्चे प्रतिनिधि और इस देश में जारी क्रान्तिकारी जन आन्दोलन के नेता के रूप में, अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को नेपाल की वस्तुस्थिति के बारे में अवगत कराना अपना कर्तव्य समझते हैं और सभी लोगों से यह अपील करते हैं कि वे उस लड़खड़ाते पुराने राज्य द्वारा किये जा रहे एकतरफा प्रचार से गुमराह न हों जो उधार में मिले समय के भरोसे अपना वजूद बचाने की हताशापूर्ण कोशिशों में लगा हुआ है।

नेपाल के पुराने प्रतिक्रियावादी राज्य का प्रमुख ज्ञानेन्द्र शाह, जिससे लोग नफ़रत करते हैं, जो एक जून 2001 को नरेश वीरेन्द्र के समूचे परिवार के बर्बर कत्लेआम का मुख्य षड्यंत्रकारी है और कातिलों के गिरोह का सरदार है, तेजी के साथ अपने ही वजन से दबकर चूर-चूर हो रहा है। 26 नवम्बर को आपातकाल की घोषणा, जनता के सभी बुनियादी और नागरिक अधिकारों का निलम्बन और देश के ऊपर फौजी तानाशाही को थोपना कातिलों के इस गिरोह द्वारा अपने अवैधानिक और अलोकप्रिय शासन को जिन्दा रखने की आखिरी हताशाभरी कोशिश है। इस फासीवादी गुट द्वारा इन दिनों बेगुनाह आम लोगों के अन्धाधुन्ध कत्लेआम, स्त्रियों के साथ बलात्कार, सम्पत्ति की लूट, प्रेस की आजादी का गला घोंटने, विरोध में आवाज उठाने वाले नागरिकों को जेलों में तूंसने के रूप में आतंक का जो कहर बरपा होना शुरू हुआ है वह सारी हदों को पार कर रहा है। दरअसल मौजूदा घटनाक्रम पिछले जून में ज्ञानेन्द्र द्वारा राजमहल में किये गये बर्बर कत्लेआम और तख्तापलट की ही अगली कड़ी है जिससे देश में धीरे-धीरे आगे बढ़ रही जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया को उलटा जा सके और फर्जी राजशाही के अधीन सैनिक तानाशाही कायम की जा सके। इसे हम उसी समय से उजागर करते रहे हैं। नेपाल में संसदीय संस्थाएं सर्वशक्तिमान राजशाही की हल्की छायाएं भर ही हैं, जो परम्परागत रूप से राज्य की सशस्त्र सेनाओं को नियंत्रित करती हैं। और पिछले दिनों क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ चली शान्ति वार्ताएं ज्ञानेन्द्र द्वारा अपने फासिस्ट एजेण्डा को आगे बढ़ाने के लिए मोहलत हासिल करने और अपनी स्थिति मजबूत बनाने की नीयत से रचे गये जाल थे।

ताजा स्थिति यह है कि इस शासक गुट द्वारा अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की आंखों में धूल झोंकने, विश्व जनमत को अपने पक्ष में खड़ा करने और अपनी बर्बर सैनिक तानाशाही को सही सिद्ध करने के लिए एक हताशापूर्ण दुष्प्रचार अभियान शुरू कर दिया गया है। नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में चल रहे क्रान्तिकारी जनान्दोलन को "आतंकवादी" घोषित करना और हाल की शान्तिवार्ताओं को तोड़ने का दोष हमारे ऊपर मढ़ना ऐसी ही एक कोशिश है। जबकि तथ्य इसके ठीक उलट हैं। जब सामन्ती राज्यतंत्र, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के सर्वतोमुखी जनतांत्रीकरण के सभी शान्तिपूर्ण राजनीतिक रास्तों को इन परम्परागत निहित स्वार्थों ने जबर्दस्ती रोक दिया केवल तभी हमने जनता के सशस्त्र प्रतिरोध की कार्रवाइयों का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी संभाली। हमने हमेशा हताश तत्वों द्वारा एक प्रतिक्रियावादी और दकियानूसी विचारधारा के दम पर आतंकवाद का सहारा लेने और एक वैज्ञानिक विचारधारा के मार्गदर्शन में भविष्योन्मुखी जनाधारित क्रान्तिकारी आन्दोलन के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींची है। नव जनवाद या जनता के जनवाद की हमारी खुले तौर पर घोषित नीतियां एवं कार्यक्रम, वर्ग, जाति, राष्ट्रीयता और लिंगभेद पर आधारित उत्पीड़न के शिकार कोटि-कोटि जनों की हमारे आन्दोलन में स्वैच्छिक भागीदारी हमारे खिलाफ किसी भी तरह के बदनीयती भरे दुष्प्रचार को आसानी से फटकार देगी और हमारे प्रगतिशील, जनतांत्रिक राजनीतिक विश्वासों को कायम करेगी। हमारा आपसे निवेदन है कि आप अपने स्वतंत्र स्रोतों से यह सच्चाई प्रमाणित कर लें कि देश भर में हमारे जनान्दोलन को कितना जबर्दस्त जनसमर्थन हासिल है और पुराना शासन कितना अलग-थलग और घृणा का पात्र है।

जहां तक हमारे ऊपर लगाये गये इस झूठे आरोप का सवाल है कि पुराने राज्य के प्रतिनिधियों के साथ वार्ताओं के ताजा दौर से हम बाहर निकले हैं, तथ्य यह है कि हमारे पक्ष ने ही अधिकतम धैर्य और लचीलापन दिखाया है और समस्या के न्यूनतम सम्भव राजनीतिक समाधान की कोशिश की। एक तात्कालिक राजनीतिक समाधान के रूप में हमने एक अन्तरिम सरकार के गठन, एक नये संविधान का मसविदा तैयार करने और गणराज्य घोषित करने का प्रस्ताव किया था। लेकिन जब राज्य के गणतांत्रिक स्वरूप का विचार सत्ता पक्ष द्वारा स्वीकार नहीं किया गया तो हमने विकल्प के रूप में एक चुनी हुई संविधान सभा बुलाने का प्रस्ताव रखा जिससे स्वयं सम्प्रभु जनता को राजशाही और गणतंत्र में चुनाव करने का अन्तिम अधिकार मिल सके। इस प्रस्ताव को भी एक ही झटके में नकार दिया गया और फासीवादी शासक गिरोह ने पूरे देश में शाही सेना को गोलबन्द कर दिया। ऐसे में जनता के पास वापस लौटने और आन्दोलन जारी रखने के सिवा हमारे पास कोई विकल्प नहीं बचा था। बाद के घटनाक्रमों ने पूरी तरह साबित कर दिया है कि असली राज्यसत्ता शाही सेना पर अपने नियंत्रण के जरिये भ्रातृहन्ता और राजहन्ता ज्ञानेन्द्र गुट के पास है। और तथाकथित चुनी हुई सरकार और संसद इसके हाथों की बेजान कठपुतलियां हैं। यहां यह गौरतलब है कि आज की नेपाली राजनीति में सामन्ती-फौजी ताकतों के इस वर्चस्व की जमीनी सच्चाई के मद्देनजर हमने एक जिम्मेदाराना और लचीला रुख अपनाते हुए नव जनवाद या जनता के जनवाद के अपने घोषित लक्ष्य पर अड़े रहने की बजाय गणतंत्र को संस्थाबद्ध करने और संविधान सभा के जरिये एक नया संविधान बनाने के जरिए 'पुराने जनवाद' को फलीभूत करने की कोशिश की। हम इस प्रस्ताव पर आज भी कायम हैं और सभी सशस्त्र कार्रवाइयों को मुल्तवी करने और भंग वार्ता फिर से बहाल करने के लिए तैयार हैं, बशर्ते दूसरा पक्ष इस पर राजी हो।

इस प्रकार नेपाल में मौजूदा संघर्ष 'जनवाद' और आतंकवाद के बीच नहीं है, जैसा कि घोर प्रतिक्रियावादी शासक गिरोह बदनीयती के साथ प्रचारित करने में जुटा हुआ है, बल्कि एक तरफ, सभी सामन्ती बेड़ियों से मुक्त एवं जनता के विशाल बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले सच्चे जनवाद, और दूसरी ओर विदेशी मदद के बूते अपना अस्तित्व बचाने में जुटे सामन्ती सैन्यवाद के बीच है। नेपाल के देहातों में वर्ग, जाति, लिंगभेद आधारित, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय उत्पीड़न की सभी बेड़ियों को तोड़ देने वाले सर्वतोमुखी जनतांत्रीकरण की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ रही है, और हम इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के नेतृत्वकारी कोर के रूप में अन्तरराष्ट्रीय जनतांत्रिक शक्तियों का आह्वान करते हैं कि वे नेपाली जनता की जनतांत्रिक आकांक्षाओं का सम्मान करें और किसी भी रूप में इसमें अड़ंगा न डालें। लड़खड़ाते पुराने राज्य को सैनिक या किसी भी अन्य प्रकार की मदद जनता पर हो रहे अत्याचारों को बढ़ावा देने में फासीवादी फौजी ताकतों की मदद करेगी और जनता के बुनियादी मानवीय एवं नागरिक अधिकारों को रौंद डालेगी, और इस तरह यह सीधे-सीधे सार्वभौमिक जनतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ होगी।

चूंकि जनता के विशाल बहुमत ने पुराने उत्पीड़नकारी राज्य के खिलाफ बगावत किया है और वस्तुतः देश के सभी देहाती इलाकों में स्थानीय स्तर पर अपने लिए राजनीतिक सत्ता का रूप ढूंढ निकाला है, इसलिए यह हमारा कर्त्तव्य बन जाता है कि हम केन्द्रीय स्तर पर भी एक वैकल्पिक राजनीतिक सत्ता को संगठित करने में पहलकदमी लें। एक संयुक्त क्रान्तिकारी जन परिषद के रूप में इस दिशा में शुरुआत की गयी है, जो नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में सभी प्रगतिशील एवं जनवादी शक्तियों का एक संयुक्त क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चा है। इसलिए हम अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से यह उम्मीद रखते हैं कि नेपाल के बारे में कोई भी महत्वपूर्ण द्विपक्षीय या बहुपक्षीय निर्णय लेने से पहले नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) और संयुक्त क्रान्तिकारी जनपरिषद से वह परामर्श ले।

नेपाल में भ्रूण रूप में विकसित हो रहे एक नये राज्य के रूप में हम आपको भविष्य सम्बन्धी अपनी नीतिगत प्रतिबद्धताओं से भी अवगत कराना चाहते हैं। सम्पूर्ण अर्थों में राज्य के जनवादी के रूप के प्रति हमारी प्रतिबद्धता के बारे में लोग भलीभांति जानते हैं जो जनता को हर प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आजादी सुनिश्चित करेगी। विदेश नीति के क्षेत्र में हम दुनिया के सभी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धान्तों (पंचशील) के प्रति प्रतिबद्ध हैं। हम खास तौर पर अपने दो विशाल पड़ोसियों, भारत व चीन, के बाद अपने देश के स्थित होने की भू-रणनीतिक विशिष्टताओं के प्रति सतर्क हैं, और गुट निरपेक्षता पर अडिग रहते हुए इन दोनों देशों के साथ दोस्ताना रिश्ते विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे। इसलिए, हम सभी देशों, अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं और खासकर दो सबसे पास के पड़ोसियों, भारत व चीन से यह उम्मीद रखेंगे कि वे नेपाल के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें और नेपाली जनता को स्वयं अपना राजनीतिक भविष्य निर्धारित करने दें।

आने वाले दिनों में हार्दिक और परस्पर लाभप्रद रिश्तों की ओर बढ़ने की आशा के साथ,

**बाबूराम भट्टराई**
**संयोजक**
**संयुक्त क्रान्तिकारी जन परिषद, नेपाल**

**प्रचण्ड**
**अध्यक्ष**
**नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) और सुप्रीम कमाण्डर जनमुक्ति सेना, नेपाल**

# ईस्टर के मज़दूर आन्दोलन की राह पर नौ मज़दूर निलम्बित, कारखाने में प्रवेश वर्जित

**(बिगुल संवाददाता)**

खटीमा (ऊधमसिंह नगर), 10 दिसम्बर। खटीमा स्थित ईस्टर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड में 20 प्रतिशत बोनस की मांग को न मानने और प्रबन्धतंत्र के अड़ियल रवैये के कारण मज़दूर आन्दोलन की राह पर हैं। प्रबन्धतंत्र घाटे के बैलेंस शीट के साथ मज़दूरों के हक पर डाका डालते हुए न्यूनतम 8.33 बोनस दे रहा है जिसे ईस्टर इण्डिया इम्प्लाइज यूनियन ने अस्वीकार कर दिया है।

24 नवम्बर को यूनियन द्वारा प्रबन्धतंत्र को दिये गये ज्ञापन में 10 दिसम्बर तक मांगे न माने जाने तक अनिश्चितकालीन हड़ताल की घोषणा की गयी थी। उधर प्रबन्धतंत्र ने हड़ताल से निपटने के लिए 8 दिसम्बर को कारखाना परिसर में बाहरी तत्वों के घुसा लेने से मज़दूर भड़क उठे और बाहर निकलवाने की जी-तोड़ कोशिश करने लगे। प्रबंधतंत्र की नीयत हर हाल में आपसी विवाद और झगड़े की स्थिति पैदा करवाना था। यूनियन द्वारा बाहरी तत्वों को निकलवाने की स्थिति विस्फोटक हो गयी, उसने टूल डाउन कर दिया। जवाब में प्रबन्धकों ने 9 मज़दूरों को (सभी यूनियन पदाधिकारी) निलम्बित करते हुए उनके कारखाना परिसर में प्रवेश पर रोक लगा दी।

इस स्थिति के बाद मज़दूर हड़ताल पर चले गये। प्रबन्धकों द्वारा कारखाना परिक्षेत्र में धरना प्रदर्शन पर न्यायालय के स्थगनादेश से हड़ताली मज़दूरों का तहसील परिसर में बेमियादी धरना चल रहा है। इस दौरान उपश्रमायुक्त की मध्यस्थता में लिपक्षीय वार्ताओं का दौर चलता रहा लेकिन प्रबन्धतंत्र के अड़ियल रुख के कारण नतीजा शून्य रहा। उधर प्रबन्धकों द्वारा यूनियन प्रतिनिधियों पर फर्जी मुकदमे कायम किये जा रहे हैं। स्थिति लगातार नाजुक बनी हुई है।

ऊहापोह और आशंका के बीच मज़दूर मुस्तैदी से मोर्चे पर डटे हुए हैं। फिलहाल गतिरोध की स्थिति बनी हुई है।

## 'पोटो' बना ही है आम जनता के संघर्षों को दबाने...

(पेज 1 से आगे)

इज्जत ढंकने की कोशिश कर रही है कि पुलिस पोटो के एक प्रावधान की गलत व्याख्या कर रही है। लेकिन गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी जाने-पहचाने फासिस्ट अंदाज में कहते हैं कि जब आतंकवादी पांच लाख कश्मीरी हिंदू परिवारों को बेघर बना सकते हैं तो **पोटो के तहत यदि दस-बीस निर्दोष परिवार बेघर हो जाते हैं तो इसमें खास बात क्या है।**

आडवाणी का महज यह वक्तव्य उनकी खतरनाक व निरंकुश सोच को उजागर करता है। यह बुर्जुआ न्याय की उस बुनियादी धारणा (हालांकि पूंजी के इस स्वेच्छाचारी दौर में यह भी खण्डित ही होती रही है) को ही खण्डित करती है कि एक-दो दोषी भले छूट जाएं लेकिन निर्दोष को सजा हर्गिज नहीं मिलनी चाहिए। आडवाणी तो सीना ठोंक कर यहां तक कहते हैं कि 'आतंकवाद निवारक अध्यादेश पर आम सहमति बने या न बने सरकार इसे कानून बनाने के लिए दृढ़ संकल्प है।' उन्होंने पूंजीपतियों की संस्था 'पी एच डी वाणिज्य उद्योग मण्डल' के वार्षिक अधिवेशन में साफ तौर से कहा कि 'हम आम सहमति के इंतजार में अपनी जिम्मेदारियों को निभाने से नहीं रुक सकते।'

आडवाणी का वक्तव्य सरकार की इस मंशा को और स्पष्ट रूप से पुष्ट करता है कि पुलिस मशीनरी को पोटो का हथियार देकर जायज-नाजायज हर तरह से जनता को कुचला जाये। इससे यह मंशा भी साफ जाहिर होती है कि इसका दुरुपयोग करने के लिए ही इसे जारी किया गया है। वैसे तो आडवाणी का वक्तव्य ही आतंकवादी सोच का नमूना है, तो क्या उनपर पोटो लगेगा?

दरअसल पोटो बना ही है आम जनता के संघर्षों को दबाने-कुचलने के लिए। इसके प्रावधान से साफ नतीजा निकलता है कि **किसी प्रदर्शन द्वारा घेरा तोड़ने अथवा लोगों अथवा सामानों की आवाजाही को रोकने वाली यूनियन की कोई हड़ताल पोटो के दायरे में समेटी जा सकती है।** वह व्यक्ति या संगठन **आतंकवादी** हैं जिनकी **मंशा** भारत की एकता, अखंडता, सुरक्षा या सम्प्रभुता को खतरा पहुंचाना अथवा जनता के भीतर या जनता के किसी भी तबके के भीतर आतंक पैदा करना हो। आतंकवादी कार्रवाई के लिए षड्यंत्र करना, उन्हें अंजाम देने की कोशिश करना, **हिमायत** करना, **उकसाना, सलाह** देना या प्रेरित करना भी पोटो के तहत दण्डनीय है। अर्थात "आतंकवादी" कार्रवाई के आरोपी व्यक्ति से परोक्ष रूप से जुड़े किसी भी व्यक्ति को इसकी चपेट में लिया जा सकता है। आतंकवादी घोषित करना अथवा उससे जुड़ा साबित करना पूरी तरह से पुलिस अफसर, जिला प्रशासन तथा राज्य व केन्द्र सरकारों पर निर्भर है। गुलाम मुहम्मद पर पोटो महज इसलिए लगा क्योंकि किसी मारे गये आतंकवादी के पास से उनका पता बरामद हुआ था।

पक्ष और विपक्ष की उठापटक के बीच केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने पोटो में तीन संशोधनों की घोषणा कर दी – पोटो पांच वर्ष की जगह तीन वर्ष तक क्रियाशील रहना, प्रेस की आजादी को दुष्प्रभावित करने वाले प्रावधान [धारा 3 (8)] को हटाने व सम्पत्ति कुर्क व जब्त करने का अधिकार न्यायालय को सौंपने का निर्णय लिया गया। लेकिन इससे पोटो की भयावहता में कोई भी फर्क नहीं पड़ता। पोटो सामान्य कानूनों के विपरीत कार्यपालिका को यह अधिकार देता है कि वह किसी चारदीवारी के भीतर प्रवेश करने और तलाशी लेने, व्यक्तियों को गिरफ्तार करने या मकान को खाली करवाने के लिए नये विधान बनाए और इन विधानों का उल्लंघन करने पर सजाएं निर्धारित करे और उन्हें अंजाम दे। इन विधानों और आदेशों को विधायिकाओं के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई बाध्यता भी नहीं है।

यह एक ऐसा खतरनाक कानून है जिसकी चपेट में कोई भी नागरिक कभी भी आ सकता है और जो अभियुक्त को किसी भी प्रकार की कोई भी सुरक्षा नहीं देता है। यह एक ऐसा कानून है जिसके तहत अभियुक्त को अपनी बेगुनाही खुद साबित करनी होगी। जबकि गिरफ्तार व्यक्ति को 30 दिन तक पुलिस हिरासत में और बिना अभियोग लगाये 6 माह तक न्यायिक हिरासत में रखा जा सकता है और जमानत के अधिकार भी अतिसीमित, लगभग नगण्य हैं (अदालत तभी जमानत दे सकती है जब वह संतुष्ट हो जाए कि अभियुक्त दोषी नहीं है)। यही नहीं पुलिस अधिकारियों के समक्ष दिया गया इकबालिया बयान (थर्ड डिग्री के जरिये!) व टेलीफोन आदि पर मौखिक बातचीत के रिकार्ड (जिसे इस इलेक्ट्रानिक युग में किसी भी तरह से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जा सकता है) को बतौर गवाह स्वीकार किया जाएगा। पुलिस द्वारा प्रस्तुत गवाहों के बारे में भी गोपनीयता बरती जाएगी (यानी गवाह से जिरह की संभावना खत्म)।

कुल मिलाकर आतंकवाद तो महज एक बहाना है असली हमला तो अपने हक-हकूक की बात करने वाली आम जनता पर है। सरकार, उदारीकरण के इस दौर में लागू हो रही जनविरोधी नीतियों को पोटो के दहशत के साये में बेखौफ होकर थोप देना चाहती है। वह बेइन्तहां बढ़ती बेरोजगारी, महंगाई, तबाही-बर्बादी के खिलाफ किसी भी आवाज़ को कुचल देना चाहती है। वह आज की नहीं, आज के गर्भ में चल रहे भावी जन उभार के मद्देनजर तैयारी कर रही है। कभी 'आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम' (मीसा) (आपातकाल का अंधेरा दौर) कभी 'राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' (रासुका) कभी 'आतंकवाद एवं विध्वंसकारी गतिविधि निरोधक अधिनियम' (टाडा) तो कभी 'आतंकवाद निरोधक अध्यादेश' (पोटो) का सहारा सत्ताधारी समय-ब-समय पर लेते रहे हैं।

इस कानून के विरोधी की विपक्षी दलों द्वारा चाहें जो भी नौटंकी चल रही हो, आर्थिक नीतियों की ही तरह इस मुद्दे पर भी सभी चुनावी मदारी एकमत हैं। सबके हाथ खून से सने हुए हैं। मीसा से लेकर टाडा तक कांग्रेस की ही देन थी। पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार अपने राज्य में पोटा जैसा कानून 'पोका' पारित करवाना चाहती है, लेकिन घटक दलों की रस्साकशी के बीच फिलहाल यह कुछ समय के लिए टल गया है। कोयम्बटूर बम विस्फोट के बाद तमिलनाडु सरकार के 'प्रिवेंशन ऑफ टेररिज्म ऐक्ट' (पोटा) और इसी तर्ज पर आंध्र प्रदेश सरकार के प्रयास आम जनता के प्रबल प्रतिरोध से असफल हो गये थे लेकिन महाराष्ट्र में भाजपा-शिवसेना सरकार द्वारा (1999) 'महाराष्ट्र कंट्रोल ऑफ आर्गनाइज्ड क्राइम एक्ट' (मोक्का) लागू किया जा चुका है। इसलिए यह सब तो विरोध के महज रस्मी कवायद हैं।

पोटो की मुखालफत करते हुए इस बात को मद्देनज़र रखना बेहद ज़रूरी है कि भारतीय अर्थतंत्र के गहराते संकट से उपजे राजनीतिक संकट के परिणाम स्वरूप ही सत्ता का चरित्र ज्यादा से ज्यादा निरंकुश होता जा रहा है और काले कानूनों की श्रृंखला लम्बी होती जा रही है और हर वर्ष हड़तालों-संघर्षों को कुचलने, पुलिस दमन और फर्जी मुठभेड़ों की संख्या बढ़ती जा रही है। आपातकाल के बाद अघोषित आपातकाल के दौर की ही उपज है पोटो। इसका वास्तविक और सच्चा प्रतिरोध संघर्ष जनपक्षधर शक्तियों द्वारा ही चलाया जा सकता है। आम मेहनतकश अवाम को अपने मुक्तिकामी संघर्ष के एक हिस्से के तौर पर पोटो के खिलाफ भी जनान्दोलन संगठित करना होगा। उन्हें इस मुद्दे पर सहमत तमाम संगठनों-मंचों-बुद्धिजीवियों के साथ मोर्चा बनाना होगा और इस काले कानून को दफ्न करने के लिए संघर्षरत होना होगा।

## सरकार के असली इरादों का खुला इजहार...

(पेज 1 से आगे)

हिंसक गतिविधियों में शामिल होना मौजूदा राजनीतिक वातावरण में प्रतिबन्ध लगाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं मुहैय्या कराते।" बयान में आगे कहा गया है कि "आज के समय में हिंसा का इस्तेमाल सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों की कार्रवाइयों का एक अभिन्न अंग बन गया है।"

केन्द्र सरकार में पूर्व कानून मंत्री और जाने-माने कानून विशेषज्ञ श्री शान्ति भूषण कहते हैं कि यह प्रतिबन्ध पक्षपातपूर्ण है। दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और विश्व हिन्दू परिषद के किसी भी मोर्चा संगठन (भारतीय जनता पार्टी, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद या दुर्गावाहिनी आदि) पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। जबकि पी. डब्ल्यू.जी. और एम.सी.सी. के साथ यह किया गया है।

केन्द्र सरकार का यह कदम सीधे-सीधे एक फासिस्ट कदम है। जनसंगठनों का एक संविधान होता है और वे भारतीय संविधान में दिये गये संवैधानिक अधिकारों के तहत अपनी जनकार्रवाइयां संचालित करते हैं। अगर सरकार के पास इस बात के प्रमाण हों कि किसी जनसंगठन से जुड़ा कोई व्यक्ति गैर कानूनी घोषित किसी संगठन से ताल्लुक रखता है तो ऐसे व्यक्तियों पर वह दिये गये कानूनों के तहत कार्रवाई भले करे लेकिन उस जनसंगठन पर ही प्रतिबन्ध लगाना गैर कानूनी है। साथ ही यह जनता की आवाज का गला घोंटना है। पूंजीवादी सत्ताएं बार-बार यह साबित करती रहती हैं कि जनवाद-जनवाद का खेल वे चाहे जितना खेलें, किसी जनसंघर्ष को कुचलने के लिए वे अपने ही खेल के नियमों की धज्जियां उड़ा देने में कोई चूक नहीं करतीं। यह 'फाउल' खेलना उनकी आदत है।

आतंकवाद को कुचलने के नाम पर यह सीधे-सीधे राजकीय आतंकवाद की कार्रवाई है। कई मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियां और उनके नेता भी इस कार्रवाई का विरोध इसीलिए कर रहे हैं। मुद्राराक्षस जैसे जाने-माने साहित्यकार 'राष्ट्रीय सहारा' के एक आतंककारी कारनामों का उल्लेख करते हुए सवाल खड़ा करते हैं कि क्या इससे आतंकवाद पर काबू पाया जा सकता है? तमाम बुर्जुआ नेता तक बिहार, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा आदि में 'नक्सली गतिविधियों' को राजनीतिक समस्या बताते रहे हैं और इनके राजनीतिक समाधान की वकालत करते रहे हैं। ऐसे में क्या यह सवाल नहीं पूछा जाना चाहिए कि आतंकवाद को कुचलने के नाम पर राजकीय आतंकवाद की कार्रवाईयां संचालित करने वाले भारतीय राज्य को सजा कौन देगा?

यह बात बिल्कुल साफ है कि पी.डब्ल्यू.जी. और एम.सी.सी. और इनके सभी जनसंगठनों पर प्रतिबन्ध लगाकर सरकार ने डर से पैदा हुई आक्रामकता का इजहार किया है। केन्द्र सरकार डरी हुई है – आने वाले जनसंघर्षों के तूफानों से। यह देश की सत्ता बेबसी और कायरता को ही उजागर करता है। डरी हुई सत्ताएं दमन का पाटा चला सकती हैं लेकिन इससे वे प्रतिरोध की आग को हवा देने का ही काम करती हैं। देश की सत्ता यही कर रही है।

●

## यूरेनियम खदान मज़दूर...

(पेज 5 से आगे)

वक्त पांच यूनियनें हैं। चार पुरानी मज़दूर यूनियनें – इंटक, बी एम एस, एटक व झारखण्ड मुक्ति मोर्चा से जुड़ी हुई हैं। ये सभी यूनियनें दलाल हो चुकी हैं और इनके नेता बिक चुके हैं। पांचवी स्टाफ यूनियन 'मिनिस्टीरियल स्टाफ एसोसिएशन' चूंकि अभी नयी है इसलिए थोड़ा बहुत जुझारूपन दिखला देती है। लेकिन कुल मिलाकर देश के अन्य उपक्रमों की ज्यादातर यूनियनों की भांति यहां भी इनके पतनशीलता का वही आलम है। यहां की मज़दूर आबादी बार-बार धोखाधड़ी का शिकार होती रहती है।

दूसरी तरफ, रीढ़विहीन यूनियनों के कारण प्रबन्धतंत्र की निरंकुशता और ज्यादा बढ़ती जा रही है। तरह-तरह से वे मज़दूरों पर दबाव बढ़ाते जा रहे हैं। मज़दूर प्रबन्धतंत्र व यूनियन के दो पाटों के बीच पिस रहे हैं। प्रबंधतंत्र मज़दूरों पर दबाव बनाने के लिए पुलिस, सीमा सुरक्षा बल व रेपिड ऐक्शन फोर्स की भी मदद लेता रहता है।

इस कार्पोरेशन में 1971 में एक बड़ा आन्दोलन हुआ था। जब 60 दिनों की लम्बी हड़ताल यहां चली थी। मज़दूर तो संघर्षशील रहे लेकिन नेतृत्व के घुटने टेक देने के कारण यह आन्दोलन पराजित हो गया और पस्तहिम्मती व निराशा का माहौल व्याप्त हो गया। लेकिन मज़दूरों ने उम्मीद नहीं छोड़ी। कुछ नक्सलाइट नेताओं के प्रभाव में यहां के मज़दूर एक बार फिर संगठित हुए लेकिन बाद में यह भी क्रम टूट गया। इधर मौजूद यूनियनें लगातार अवसरवादी होती गयीं। परिणामत: आक्रोशित मज़दूरों द्वारा स्वत:स्फूर्त आन्दोलन उठने लगे।

**यूनियनों को धता बताकर मज़दूरों ने संघर्ष की आवाज़ बुलन्द की**

इस सार्वजनिक खनन के मज़दूरों और प्रबन्धतंत्र के बीच पांच वर्षीय वेतन समझौता होता रहा है, लेकिन 1996 से यहां कोई वेतन समझौता न तो हुआ है और न ही कोई वेतन वृद्धि हुई है। अब तो एक नये वेतन समझौते का भी वक्त आ चुका है। ऊहापोह की स्थिति में रह रहे मज़दूरों ने अन्तत: विस्फोट किया और पिछले सितम्बर माह में तीनों खदानों के मज़दूरों ने स्वत:स्फूर्त हड़ताल कर दी। प्रबन्धतंत्र ने तत्काल हथियारबन्द फोर्स बुला लिया। कालोनी से लेकर खदानों तक में नाकेबन्दी कर दी गयी। मज़दूर फिर भी डटे रहे। घबराकर यूनियन नेताओं ने आनन-फानन में प्रबन्धतंत्र से एक समझौता करके मज़दूरों के पीठ में एक बार फिर छुरा घोंपा। पता यह चला कि मज़दूरों की महज 38 रुपये की बढ़ोत्तरी हुई है। स्टाफ एसोसिएशन के समझौते से बाहर निकल आने के कारण फिलहाल यह समझौता लागू नहीं हो पाया है और उधर मज़दूर संशय-दुविधा की स्थिति में पुन: आन्दोलन की तैयारी में है।

इसी बीच एक और महत्वपूर्ण घटना यहां घटित हुई। हुआ यह कि खदान के आधुनिकीकरण और कम्प्यूटराइजेशन के बाद यहां भी सरकार ने छंटनी की प्रक्रिया शुरू कर दी। पहले 'स्वैच्छिक अवकाश योजना' के तहत कुछ लोगों की छुट्टी की गयी। फिर ऐसे लोगों की सूची बनाई गयी जो ज्यादा छुट्टियां लिया करते थे। इन्हें चार्जशीट थमाते हुए यह धमकी दी गयी कि जो भी मज़दूर छह माह तक नियमित ड्यूटी नहीं करेगा उसे निष्कासित कर दिया जाएगा। सबने लगातार ड्यूटी करके प्रबन्धतंत्र की इस नापाक योजना को ध्वस्त कर दिया।

इसके बाद प्रबन्धकों ने दूसरी चाल चलते हुए नरवा माइन्स के एक मज़दूर को विगत 4 नवम्बर को निष्कासन का पत्र पकड़ा दिया। उसे अपनी विश्वासपत्र यूनियनों पर भरोसा था। लेकिन उसका यह वार भी उल्टा पड़ा। देखते ही देखते, इस खदान के सभी मज़दूरों ने स्वत:स्फूर्त ढंग से हड़ताल कर दी। हड़बड़ाए यूनियन नेता हड़ताल तुड़वाने की कोशिश करने लगे। मज़दूर इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए और ज्यादा एकताबद्ध हो गये। उधर प्रबन्धतंत्र ने फोर्स बुलाकर नरवा इकाई व कालोनी में नाकेबन्दी करवा दी और सशस्त्र मार्चपास करवाया। मज़दूर टस से मस नहीं हुए। दूसरी तरफ जादूगोड़ा खदान के मज़दूरों ने भी समर्थन में 6 मार्च के बाद हड़ताल पर जाने की तैयारी कर ली। नाजुक स्थिति को देखते हुए मुख्य प्रबन्ध निदेशक को निष्कासन वापस लेना पड़ा। इस जीत से यहां के मज़दूरों के हौसले बुलन्द हैं।

## एनरॉन को दिवाला निकला

# पूंजी के गंदे खेल का एक और घिनौना चेहरा सामने आया

ऊर्जा क्षेत्र में दुनिया की सबसे बड़ी और अमेरिका की सातवीं सबसे अमीर कम्पनी एनरॉन एक ही झटके में दिवालिया हो गयी। इस दिवालिया कम्पनी ने अपने 49 अरब डॉलर की परिसम्पत्तियों को कर्जदाताओं से बचाने के लिए न्यूयार्क के एक अदालत में अमेरिकी दिवालिया कम्पनी कानून अध्याय 11 के तहत वाद दायर करके अपने लिए सुरक्षा कवच का इन्तेजाम करने में जुट गयी है। यह घटना विश्व साम्राज्यवाद की एक प्रतीक घटना है जो पूरे पूंजीवादी तंत्र के झूठ-फरेब-धोखाधड़ी और पोपलेपन को ही साबित करती है।

अबसे महज सोलह साल पहले टैक्स (अमेरिका) के एक तेल व्यापारी कैनेथ ले द्वारा स्थापित एनरान कम्पनी, दिवालिया होने से पूर्व 80 अरब डालर की संपदा की मालिक बन बैठी थी। अपने राजनीतिक सम्बन्धों और जोड़-तोड़ के पूंजीवादी तकनीकों से यह महज डेढ़ दशक में शीर्ष पर पहुंचकर दिवालिया हो गयी। अभी पिछले अमेरिकी चुनाव में जार्ज बुश की पार्टी को इस कम्पनी द्वारा दिये गये 24 लाख डालर का चन्दा भी, कोई सरकारी मदद नहीं पहुंचा सका। शायद अफगान युद्ध का उलझाव व पूंजीवादी तन्त्र की मन्दी इसका कारण रहा हो!

पूंजीवादी तंत्र के लूट के खेल बड़े निराले हैं। सटोरिया कारोबार के इस दौर में इनके रंग-ढंग और भी निराले हो चुके हैं। घूस-चंदा, हेरा-फेरी, आंकड़ों की बाजीगरी इस दौर में कम्पनियों के फलने-फूलने के मुख्य हथियार हैं। एनरान भी इसी रंग ढंग में ढली, फली-फूली एक कम्पनी थी। पहले डेमोक्रेटों बाद में बाप-बेटे जार्ज बुश की पार्टी रिपब्लिकन को चन्दा खिलाकर एनरान शीर्ष के पायदानों पर ऊपर चढ़ती चली गयी। इसके आगे बढ़ने के तौर-तरीके का एक नमूना भारत में डाभोल परियोजना लागू होने के दौर में ही सामने आया था, जब कांग्रेस, भाजपा, शिवसेना प्रमुखों को इसने 'शिक्षित' किया था और मेज के नीचे से भारी रकम टिकाकर विवादास्पद विद्युत परियोजना को इसने स्थापित किया था। जो शुरुआती दौर में ही महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड को कंगाल बना गयी। तमाम हलकों से विरोध के कारण इसे यहां से भागने के लिए विवश होना पड़ा था। तब जनदबाव के कारण ही इसके द्वारा "शिक्षितों" द्वारा इसको रोकने की तमाम कोशिशें रंग नहीं ला पाई थीं। इसी बीच इसकी वैश्विक धोखाधधड़ियां जग जाहिर होने लगीं।

यह कम्पनी उस वक्त धाराशायी हो गयी जब इसके हेराफेरी की कलई खुल गई। पूंजीवाद तंत्र में कम्पनियों के आपसी अन्तरविरोधों व गलाकाटू प्रतियोगिता के कारण कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि शीर्ष की किसी कम्पनी की नैया डूब जाती है और उस कम्पनी का और साथ ही पूंजीवादी लुटेरी तंत्र का पोपलापन खुलकर सामने आ जाता है। एनरान के साथ भी यही हुआ। अमेरिकी प्रतिभूति और विनिमय आयोग ने एनरॉन के कुछ संदेहास्पद सौदों की जांच के दौरान पाया कि इन सौदों में होने वाले घाटों को कम्पनी के खातों में दर्ज ही नहीं किया जाता है। कम्पनी लाभप्रद बनी रहती है और इसके शेयर उछाल लेते जाते हैं। जैसे ही इस हेराफेरी का खुलासा हुआ, एक समय 90 डालर के शीर्ष पर पहुंचा इसका शेयर एक झटके में 0.61 डालर पर गोते लगाने लगा और 80 अरब डालर की परिसंपदा वाली इस कंपनी की औकात महज 43.5 करोड़ डालर पर पहुंच गयी। इस वक्त कम्पनी कम से कम 16.8 अरब डालर के कर्ज में डूबी हुई है।

हालात ये है कि आज कम्पनी के सौदे कौड़ियों के मोल भी नहीं पट रहे हैं। एनरॉन को बेचने की, कम्पनी प्रमुख केनेथ ले की अन्तिम कोशिशें भी धूल-धूसरित हो गयीं।

**डाभोल (महाराष्ट्र) स्थित डाभोल पावर कम्पनी के एक प्लाण्ट के गेट के बगल में खड़ा एक सुरक्षाकर्मी। दिवालिया हो चुकी प्रमुख अमेरिकी ऊर्जा कम्पनी एनरॉन कारपोरेशन द्वारा बनाया गया 2.9 अरब डालर का यह प्लाण्ट पिछले जून महीने से बन्द पड़ी है। कम्पनी बन्द होने से हजारों मज़दूरों की रोजी-रोटी छिन चुकी है।**

हाथ खींच लिए। एनरॉन की लंदन सबसीडरी एनरॉन यूरोप की भी हालत पतली हो गयी, जापान व दक्षिण कोरिया (यहां इसके संयुक्त उद्यम का प्राकृतिक गैस बाजार में करीब 25 प्रतिशत हिस्से पर कब्जा रहा है) में भी इसकी लुटिया डूब गयी। इसके दिवालिया होने के साथ ही इसकी कितनी ही सहायक कम्पनियों, हजारों निवेशकों और कर्मचारियों के अलावा विभिन्न स्तरों पर इससे जुड़ी बैंकिंग कम्पनियों का भी दिवाला निकल गया।

दरअसल, एनरॉन जैसे सबसे ज्यादा फलने-फूलने वाली कम्पनी के दिवालिएपन की कथा पूंजीवादीतंत्र की एक प्रतीक कथा है। एनरॉन का यह खोखलापन विश्वपूंजीवाद के ही खोखलेपन का एक रूप है। यह वित्तीय पूंजी के इस युग में सट्टेबाजी के पूरे कारोबार की हकीकत का ही बयान करता है।

चाहे कोरियाई कम्पनी देवू का दिवालियापन हो अथवा अमेरिकी एनरॉन का, चाहे बैंकों के आपस में विलय की प्रक्रिया हो अथवा तमाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एक दूसरे में विलय की कहानी है, ये सब पूंजीवाद के गलाकाटू प्रतियोगिता और छल-छद्म की देन है। यह बड़ी मछलियों द्वारा छोटी मछलियों को निगलने के ही क्रम का एक हिस्सा है। कहीं वे विलय कर रहे हैं, कहीं बाजार छीन रहे हैं तो कहीं कम्पनियों को सीधे निगल जा रहे हैं। यह ज्यादा से ज्यादा पूंजी का कम से कम हाथों में सिमटते जाने का खेल है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूंजी के गंदे, घिनौने, निरंकुश खेल की यही सच्चाई है।

**– योगेश पन्त**

# बेहद खतरनाक परिस्थितियों में काम कर रहे हैं यूरेनियम खदान मज़दूर

## सुविधाओं में लगातार कटौती और छंटनी की तलवार सिर पर

**(बिगुल संवाददाता)**

पूर्वी सिंह भूमि। खनिज सम्पदाओं के विशाल भण्डारण वाले झारखण्ड राज्य के खदान मज़दूरों और आस-पास रहने वाली आम ग़रीब आबादी बेहद कठिन व खतरनाक परिस्थितियों में रहने और गुजर-बसर करने के लिए अभिशप्त हैं। चाहे कोयला खदान हो, कॉपर या यूरेनियम सभी जगह लगभग एक ही कहानी है – मलाई मुनाफाखोरों के लिए और मेहनती ग़रीब आबादी के हिस्से चन्द रोटी के टुकड़े, खतरनाक बीमारियां, खतरनाक रेडियोऐक्टिव किरणों की मार और दुर्घटनाओं में मौत। ऐसी ही खतरनाक परिस्थितियों में काम कर रहे हैं **'यूरेनियम कार्पोरेशन आफ इण्डिया'** के खान मज़दूर। रेडियोऐक्टिव किरणों से जूझने वाले यहां मज़दूर इन दिनों सुविधाओं में लगातार होती कटौती और छंटनी की मार झेल रहे हैं।

झारखण्ड राज्य के पूर्वी सिंह भूमि में स्थित देश के इस एकमात्र यूरेनियम माइन्स (खदान) की स्थापना 1954 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. होमी जहांगीर भाभा की खोज से हुई थी। उस वक्त भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रम के रूप में 'यूरेनियम कार्पोरेशन आफ इण्डिया' की स्थापना हुई थी। कार्पोरेशन के तहत स्थापित यहां तीन खदानों – **जादूगोड़ा, भाटीन व नरवा** में खनन का काम चल रहा है, जहां लगभग सात हजार लोग कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त **दूरामडीहा** में एक और खदान खनन के लिए तैयार हैं, जहां

कभी भी खनन शुरू हो सकता है (लेकिन शुरू नहीं हुआ। शायद निजीकरण के तहत देशी-विदेशी मुनाफाखोरों को सौंपने की तैयारी चल रही हो!)। यही नहीं, **बागजाता** में एक ऐसा क्षेत्र भी ढूंढ कर "आरक्षित" रखा गया है जहां यूरेनियम का भण्डार ऊपर ही है।

जिन तीन इकाइयों में उत्खनन का काम चल रहा है, वहां मज़दूर इस वक्त दूसरे संस्तर (लेयर) से 600 मीटर नीचे से यूरेनियम निकालने का काम कर रहे हैं। साथ ही यहां 900 मीटर नीचे तीसरे संस्तर की भी खुदाई चल रही है।

**रेडिएशन के बावजूद सुरक्षा प्रावधान नगण्य**

अन्य खदानों की तरह इस खदान के मज़दूरों और आस-पास के गरीब निवासियों की सुरक्षा के इन्तजामात लगभग नगण्य हैं, जबकि कागजों में सारी सुविधाएं मुहैय्या हैं। सरकार खुद जितने सुरक्षा प्रावधानों की बात स्वीकार करती है, उतनी सुविधाएं भी यहां उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिए शोधन के काम में लगे मज़दूरों के लिए पूरे शरीर का मास्क होना चाहिए, लेकिन रेडियोऐक्टिव किरणों से जूझते हुए बगैर किसी प्रकार का मास्क पहने लोग काम करते हैं। इसी प्रकार खदानों में उतरने वाले मज़दूरों को केवल हाफ हेल्मेट और श्री लेदर्स का सामान्य जूता ही मिलता है (पहले मिलने वाला फुल बूट अब मिलना बंद हो चुका है)। चाहे खदान हो, शोधन का कार्य हो अथवा आस-पास रहने वाले लोग हों, रेडिएशन रोकने की कहीं कोई व्यवस्था नहीं है।

खदान के प्रावधानों के अनुसार दस किलोमीटर परिक्षेत्र में रहने वाले सभी नागरिकों को पानी, बिजली, दवा-इलाज आदि की मुफ्त व्यवस्था कार्पोरेशन द्वारा होना चाहिए। लेकिन इन सुविधाओं की बात तो दूर, यहां के खदानों से निकलने वाला जहरीला पानी कालोनी और आबादी के बीच से होता हुआ स्वर्ण रेखा नदी में जाकर मिल जाता है। इस पानी के शुद्धीकरण की कोई व्यवस्था नहीं है। गांव के लोग इस पानी का इस्तेमाल करते हैं। गाय, भैंस, बकरी आदि जानवर भी यही पानी पीते हैं। तमाम बीमारियों से लोग जूझते रहते हैं, कहीं कोई सुनवाई नहीं है।

यूरेनियम शोधन के बाद बचे कचरे को पास के टेलिंग पौंड (सराई डैम) में डाल दिया जाता है। इन कचरे के पुनर्शोधन की कोई व्यवस्था नहीं है। अन्तिम शोधन के लिए हैदराबाद शोधन केन्द्र को जाने वाले माल का कचरा भी वापस इसी पौंड (डैम) में डाल दिया जाता है। इस डैम से निकलने वाला प्रदूषित पानी भी गांव से गुजरने वाले नाले में जाकर मिल जाता है। नियमानुसार तो जिस डम में यहां से माल पैक होकर हैदराबाद जाता है, उसे नष्ट कर देना चाहिए, लेकिन उन डमों को वापस लाकर व सिल्ली बनाकर खुद चुके खदानों में फेंक दिया जाता है, इससे भी रेडिएशन होता है। खदान के जहरीले पत्थरों को भी यूं ही इधर-उधर फेंक दिया जाता है।

यहां के सुरक्षा प्रावधानों के बारे में जब बिगुल संवाददाता ने एक मज़दूर से पूछा तो उसने कहा कि 'यह माइन्स एशिया का नम्बर वन सेफ्टी वाला माइन्स है, लेकिन लेबर सेफ्टी के मामले में यह सबसे पीछे है।' उक्त मज़दूर ने बताया कि 'यहां 'जोहार' नामक संस्था 'एन्टी रेडिएशन' पर काम कर रही है जिसके प्रमुख घनश्याम बिरुली हैं जो मेधा पाटेकर से जुड़े हैं। यह संस्था भी सब कुछ देखकर अनदेखी बनी हुई है, बिक चुकी है और प्रबन्धकों के मनमुआफिक रिपोर्ट देती है। खुद मेधा पाटेकर भी यहां का दौरा कर चुकी हैं, लेकिन वे भी मौन साध गयीं। अब तो धीरे-धीरे हम लोग रेडिएशन के आदी हो चुके हैं।"

**दलाल यूनियनों व प्रबन्धतंत्र की निरंकुशता से मज़दूरों की बढ़ती बेहाली**

वैसे तो इस उपक्रम में इस

(पेज 4 पर जारी)

## होण्डा पावर प्रोडक्ट्स में शिफ्टिंग के खिलाफ

# संघर्ष कांटे का है लेकिन संगठित ताकत और इलाकाई एकता के दम पर जीत मज़दूरों की होगी!

**(बिगुल संवाददाता)**

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। होण्डा पॉवर प्रोडक्ट्स लि. से महत्वपूर्ण विभागों और अन्त में पूरे कारखाने की शिफ्टिंग के खिलाफ श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन ने अपने संघर्ष की तैयारी तेज कर दी है। इस वक्त संगठन के आहवान पर होण्डा मजदूर घर-घर जाकर इलाके की जनता से राज्य के मुख्यमंत्री और ऊधमसिंह नगर के जिलाधिकारी के नाम पत्र लिखवाकर भिजवा रहे हैं। इस अभियान में हल्द्वानी, लालकुआं, किच्छा, रुद्रपुर, गदरपुर आदि क्षेत्रों से उन्हें व्यापक जन समर्थन मिल रहा है।

होण्डा यूनियन ने आम जनता के नाम एक अपील भी जारी की है जिसमें कहा गया है कि होण्डा कारखाने की यहां से शिफ्टिंग का असर केवल होण्डा मजदूरों पर ही नहीं पड़ेगा बल्कि चायखानों से लेकर क्षेत्र के बाजारों तक भी पड़ेगा। इसका असर यहां से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े मेहनतकशों पर और पूरे क्षेत्र के मजदूर आन्दोलन पर पड़ेगा। अपील में लिखा है कि आज के दौर और हालात में सभी मेहनतकशों के व्यापक एकताबद्ध संघर्ष द्वारा ही किसी आन्दोलन को जीत में बदला जा सकता है। इसलिए होण्डा के इस संघर्ष में वे क्षेत्र के सभी मजदूरों कर्मचारियों, छात्रों-नौजवानों, महिलाओं, किसानों और आम जनता से सहयोग की अपील कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि जनरेटर बनाने वाला यह कारखाना 1986 में भारतीय औद्योगिक समूह श्रीराम और जापानी होण्डा के संयुक्त उपक्रम के रूप में स्थापित हुआ था। बाद में श्रीराम समूह (अपने मुनाफे समेत) इससे बाहर हो गया और यह होण्डा समूह का कारखाना बन गया। पिछले कुछ महीनों से इस क्षेत्र से सरकारी सब्सिडी और सहूलियतों का उपभोग करने के बाद होण्डा प्रबन्धतंत्र यहां से पलायन की योजना पर कार्य कर रहा है। धीरे-धीरे वह कारखाने से वेल्डिंग-पेण्टिंग आदि विभागों से महत्वपूर्ण हिस्सों को बाहर ठेके पर दे चुका है। यहां के मुनाफे से इसने पाडिच्चेरी में अलग से एसेम्बली प्लाण्ट लगा लिया है और यहां के एसेम्बली विभाग से भी आधे से ज्यादा काम शिफ्ट कर चुका है। अब प्रबन्धतंत्र कारखाने के सबसे महत्वपूर्ण एल्मुनियम मशीन शाप और स्टोर आदि को नोएडा स्थानान्तरित करने जा रहा है। फिर अन्त में खोखले कारखाने को बन्द करना आसान हो जाएगा। यहां के मजदूर इसी साजिश का विरोध कर रहे हैं।

भारी मुनाफे के बावजूद शिफ्टिंग के बारे में होण्डा प्रबन्धकों का कहना है कि ऐसा वे गुणवत्ता के कारण कर रहे हैं। जबकि यूनियन का कहना है कि गुणवत्ता तो एक बहाना है। उत्पाद को अन्तर्राष्ट्रीय मानक पर यहीं के मजदूरों ने पहुंचाया है। वे कहते हैं कि आखिर वह कौन सी जादू की छड़ी है जो नोएडा में घूमते ही "गुणवत्ता" बढ़ा देगी? कहीं यह गुणवत्ता सरकारी सब्सिडी तो नहीं है? चूंकि 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' एक जुझारू संगठन है जिसने न केवल अपने एकताबद्ध संघर्षों से अपने लिए तमाम सहूलियतें हासिल की है, वरन इसने क्षेत्र के तमाम मजदूर संघर्षों में भी अपनी वर्गीय पक्षधरता प्रदर्शित की है, इसलिए प्रबन्धतंत्र शातिराना तरीके से अपनी योजनाओं को अमली जामा पहनाने की कोशिश कर रहा है। यही यह भी गौरतलब है कि इस क्षेत्र में इलाकाई एकता को मजबूती प्रदान करने के लिए गठित 'संयुक्त मजदूर संघर्ष मोर्चा' के गठन में भी 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यहां के मजदूरों की यही वर्गीय पक्षधरता क्षेत्र के पूंजीपतियों और उनके चैम्बर के आंख की किरकिरी बनी हुई है और वे भी हर हाल में इस यूनियन को और यहां की एकता को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं।

होण्डा कारखाने के यहां से शिफ्टिंग का सवाल उत्तरांचल राज्य से लगातार पलायन कर रहे कारखानों की ही अगली कड़ी है। सलोरा, नैना सेमी कण्डक्टर से लेकर तमाम कारखाने यहां से शिफ्ट या बंद हो चुके हैं। आई.डी.पी.एल. और एच.एम.टी.जैसे कारखाने लगभग बंदी के कगार पर हैं। सूत मिलें दम तोड़ रही हैं। कई राइस मिलें, तेल मिलें, प्लाइवुड कारखाने यहां से खिसकने की तैयारी में हैं। ऐसे हालात में होण्डा मजदूरों का आन्दोलन पूरे क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण आन्दोलन साबित होगा।

एक तरफ श्रम कानूनों में घातक फेरबदल हो रहे हैं, दूसरी तरफ आन्दोलनों से निपटने के लिए 'पोटो' लागू हो रहा है, ऊपर से भाजपा के मजदूर विरोधी तेवर से सीधा सामना है। प्रधानमंत्री की जापान यात्रा के दौरान वहां के उद्योगपतियों को दिये गये "आश्वासन" से जापानी कम्पनियों के हौसले और बुलन्द होंगे। ऐसे में होण्डा मजदूरों के सामने जबर्दस्त चुनौतियां हैं जिसका मुकाबला उन्हें अपनी संगठित ताकत और इलाकाई मजदूरों और आम जनता के सहयोग से करना है। संघर्ष कांटे का है लेकिन जुझारू एकता और नेतृत्व के सूझ-बूझ भरे कदम के दम पर जीत मजदूरों की ही होगी।

●

## रपट सम्मेलन में जाने-माने साहित्यकारों-पत्रकारों ने कहा

# भारत नेपाल में दखलन्दाजी से बाज आये

**(बिगुल प्रतिनिधि)**

दिल्ली। पिछले सत्रह दिसम्बर को स्थानीय गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के सभागार में सम्पन्न एक सम्मेलन में जाने-माने साहित्यकारों- पत्रकारों-बुद्धिजीवियों ने नेपाल में आपातकाल का समर्थन और माओवादियों के खलाफ चल रहे सैनिक दमन-अभियान में मदद करने के लिए भारत सरकार की कड़ी भर्त्सना की। सम्मेलन में पारित प्रस्ताव में भारत सरकार से नेपाल के अन्दरुनी मामलों में दखल देने से बाज आने और भारत में रह रहे नेपाली नागरिकों की सुरक्षा की मांग की गयी। प्रस्ताव में नेपाल सरकार से आपातकाल तुरन्त खत्म कर बातचीत फिर से शुरू करने की मांग भी की गयी।

'नेपाल में आपातकाल और बाहरी हस्तक्षेप विरोधी सम्मेलन' में अपनी राय प्रकट करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार कमलेश्वर ने कहा कि नेपाल में चल रहे माओवादी आन्दोलन को किसी भी तरह आतंकवादी आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। आतंकवाद की कोई स्पष्ट विचारधारा या उसका कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम नहीं होता, जबकि माओवादी एक निश्चित विचारधारा और एक स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम लेकर संघर्ष कर रहे हैं।

श्री कमलेश्वर ने कहा कि माओवादियों की तीनों मांगें – राजशाही को खत्म कर नेपाल को गणराज्य बनाना, नयी संविधान सभा का गठन और अन्तरिम सरकार का गठन – जनतांत्रिक मांगें हैं। इन मांगों पर बातचीत आगे न बढ़ाकर आपातकाल लागू कर दमन की कार्रवाइयां करना निन्दनीय है। उन्होंने देश के सभी जनतांत्रिक नागरिकों से नेपाल में आपातकाल का विरोध करने और इन मांगों पर फिर से बातचीत शुरू करने के लिए आवाज उठाने की अपील की।

श्री कमलेश्वर ने कहा कि अभी भारत सरकार सिर्फ हथियार और अन्य सुविधाएं मुहैया करा रही है। कल वहां गृहयुद्ध की स्थिति में सेना भी भेजी जा सकती है। उन्होंने आगे कहा कि भारत व नेपाल की हिन्दुत्ववादी ताकतें मिलकर साजिश कर रही हैं। यह साफ हो जाना चाहिए कि भारत सरकार और भारत की जनता की आवाजें अलग-अलग हैं। उन्होंने कहा कि भारत सरकार की इस हस्तक्षेपवादी नीति के खिलाफ सड़कों पर भी प्रदर्शन करने की जरूरत है।

वरिष्ठ पत्रकार श्री आनन्द स्वरूप वर्मा ने नेपाल में माओवादियों के साथ वार्ता शुरू होने और फिर नेपाल सरकार द्वारा अचानक वार्ता भंग किये जाने के पूरे घटनाक्रम का विस्तार से ब्यौरा पेश करते हुए कहा कि वार्ता टूटने के लिए नेपाल सरकार दोषी है। सरकार एक तरफ तो वार्ताओं में माओवादियों को उलझाये रखना चाहती थी और दूसरी तरफ वह दमन की तैयारी कर रही थी।

श्री वर्मा ने कहा कि वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर और पेंटागन पर पिछले 11 सितम्बर को हुए आतंकवादी हमले के बाद अमेरिकी साम्राज्यवाद ने जिस तरह आतंकवाद के खात्मे के बहाने दुनिया की हुकूमतों को एकजुट करना शुरू किया है उससे दक्षिण एशिया में सीधी साम्राज्यवादी दखलन्दाजी की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी है। श्री वर्मा ने अमेरिकी विदेश व रक्षा विभाग द्वारा किये गये कई अध्ययनों के रिपोर्टों से अंश उद्धृत करते हुए दक्षिण एशिया में अमेरिका की आर्थिक-राजनीतिक और फौजी रणनीति का खुलासा किया।

श्री वर्मा ने कहा कि नेपाल के अन्दरुनी मामले में भारत अमेरिकी साम्राज्यवाद की इसी रणनीति के तहत दखलन्दाजी कर रहा है। नेपाल सरकार द्वारा माओवादियों को आतंकवादी घोषित किये जाने से पहले ही भारत के विदेश मंत्री जसवन्त सिंह ने उन्हें आतंकवादी घोषित कर दिया था जबकि उस समय तक नेपाल सरकार खुद माओवादियों को 'माओवादी विद्रोही' कहा करती थी। उन्होंने यह भी कहा कि पूंजीवादी मीडिया नेपाल में जारी घटनाक्रमों के बारे में झूठे और मनगढ़न्त रिपोर्ट प्रकाशित कर लोगों को गुमराह कर रहा है। माओवादियों की जनतांत्रिक मांगों को सही तस्वीर नहीं पेश की जा रही है। उन्होंने कहा कि नेपाल में हो रहा दमन भारत में जनतंत्र प्रेमी लोगों के लिए चिन्ता और सरोकार का विषय है। भारत में आपातकाल के अनुभव से गुजरे लोगों के लिए यह समझना कठिन नहीं कि नेपाल में क्या हो रहा है।

युवा पत्रकार आनन्द प्रधान ने कहा कि नेपाल में आतंकवाद के नाम पर जनता की जनतांत्रिक शक्तियों के लिए एक चुनौती बताते हुए कहा कि आज यहां भी सत्ता के मंसूबे साफ हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'पोटो' का जिक्र करते हुए कहा कि 'पोटो' के निशाने पर आतंकवादी नहीं बल्कि देश की जनतांत्रिक शक्तियां हैं। पी.यू.सी.एल. के श्री एन.डी.पंचाली व पीपुल्स राइट ऑर्गनाइजेशन के श्री अरविन्दो घोष ने भी नेपाल में आपात काल व भारत के हस्तक्षेप का विरोध करते हुए इसके खिलाफ आवाज उठाने का आह्वान किया।

पत्रकार पी.क्षेत्री ने भारत व नेपाल की जनता के करीबी रिश्तों के इतिहास पर रोशनी डालते हुए कहा कि आज के समय में दोनों देशों की जनता की एकजुटता की बेहद जरूरत है। उन्होंने नेपाल के इतिहास और सामाजिक-आर्थिक संरचना की खासियतों का उल्लेख करते हुए बताया कि यहां क्यों माओवादी आन्दोलन व्यापक जनता के बीच लोकप्रिय हो सका। अखिल भारत नेपाली एकता समाज के श्री बामदेव क्षेत्री ने 14 दिसम्बर को भोर में भारत रह रहे चार नेपाली नागरिकों को दिल्ली पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने की सूचना सम्मेलन को देते हुए बताया कि चार दिनों बाद भी उनके बारे में कुछ भी पता नहीं चल सका है कि उन्हें कहां ले जाया गया है। श्री क्षेत्री ने भारत के जनतांत्रिक लोगों से भारत में रह रहे नेपाली नागरिकों की सुरक्षा के लिए आवाज उठाने की अपील की।

अन्त में 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने प्रस्ताव पढ़कर सुनाया जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। सम्मेलन में सौ से अधिक लेखक, पत्रकार, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता और छात्र मौजूद थे।

**"कम्युनिज़्म भविष्य का वह लक्ष्य है, जिसके लिए हमारे वर्तमान के प्रयास निर्देशित हैं। अगर वह लक्ष्य हमारी निगाहों से ओझल हो जाता है तो हम कम्युनिस्ट नहीं रह जाएंगे। लेकिन अगर हम आज के प्रयासों को ढील दे देते हैं तब भी हम कम्युनिस्ट नहीं रह जाएंगे।"**

**माओ त्से-तुङ**

**अन्याय असमानता, शोषण-दमन के विरुद्ध विद्रोह न्यायसंगत है!**

**विद्रोह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।**

**विद्रोह करो!**

**विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो!**

विशेष सामग्री

(ग्यारहवीं किश्त)

# पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -5

## पार्टी की बुनियादी कार्य दिशा

**एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।**

**लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।**

**सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।**

**इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।**

**इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में ग्यारहवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी शृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।**

- सम्पादक

### पार्टी की "तीन करने योग्य और तीन न करने योग्य" का सिद्धान्त

पार्टी संविधान कहता है कि साथियों को "संशोधनवाद नहीं मार्क्सवाद लागू करने, टूटने नहीं एकबद्ध होने, और षड्यंत्र और साजिश न रचने और खुला और निश्छल रहने" के सिद्धान्त का अवश्य पालन करना चाहिए। क्या करना है और क्या नहीं करना है, के यह तीन सिद्धान्त पार्टी की दो लाइनों के सम्बन्ध में हमारे महान नेता अध्यक्ष माओ के ऐतिहासिक अनुभवों के संयोजन का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये ही वह मानक बनाते हैं, जिससे हम सही कार्यदिशा और गलत कार्यदिशा में फर्क करने के काबिल हो पाते हैं। ये वे तीन सिद्धान्त हैं जिनका हर पार्टी सदस्य को सम्मान करना चाहिए। हर पार्टी सदस्य को इन तीन सिद्धान्तों को हमेशा दिमाग में रखना चाहिए और उनका पालन करना चाहिए ताकि वह पार्टी में दो लाइनों के संघर्ष को सक्रिय रूप से और सही तरीके से चला सके।

**संशोधनवाद नहीं, मार्क्सवाद को लागू करो**

अध्यक्ष माओ द्वारा दिए गए, 'क्या करना है' और 'क्या नहीं करना है' के इन तीन सिद्धान्तों में से सर्वाधिक बुनियादी है: संशोधनवाद नहीं, मार्क्सवाद लागू करो। जो व्यक्ति पूरे दिल से मार्क्सवाद को लागू कर रहा है, संशोधनवाद को नहीं और चीन और पूरे विश्व की जनता के व्यापक बहुसंख्यक हिस्से के हितों की सेवा कर रहा है, वह अनिवार्य रूप से एकता के लिए कार्यरत है और खुला और निश्छल है। जो व्यक्ति संशोधनवाद लागू करता है और शोषक वर्गों के अल्पसंख्यक तत्वों की सेवा करता है, वह अपरिहार्य रूप से फूटों के लिए सक्रिय होता है और षड्यंत्रों और साजिशों में संलग्न होता है।

लगभग 50 साल से, पार्टी के भीतर अध्यक्ष माओ द्वारा पेश की गयी मार्क्सवादी-लेनिनवादी कार्यदिशा और विभिन्न अवसरवादी कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष, अंतिम विश्लेषण के धरातल पर, इसी सवाल पर रहे हैं कि मार्क्सवाद लागू किया जाय या संशोधनवाद। यह सर्वहारा क्रांति, सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी के चरित्र और सर्वहारा अधिनायकत्व की राजसत्ता के भविष्य से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसीलिए "संशोधनवाद नहीं, मार्क्सवाद लागू करो" का सिद्धान्त सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी के निर्माण के लिए एक मूलभूत प्रश्न है – यही वह सिद्धान्त है जो वह राजनीतिक दिशा तय करता है जिसे हमें अवश्य मानना चाहिए, और यही इस बात की गारण्टी देता है कि हमारी पार्टी और राजसत्ता की प्रकृति कभी नहीं बदलेगी।

मार्क्सवाद और संशोधनवाद दो धुर विरोधी सैद्धान्तिक व्यवस्थाएं हैं। मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग की सैद्धान्तिक व्यवस्था है; यह क्रांतिकारियों के हाथ में दुनिया को सही तरीके से समझने और बदलने के लिए, एक शक्तिशाली हथियार है। मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग और अन्य मेहनतकश जनता के बुनियादी हितों का प्रतिनिधित्व करता है। यह सर्वहारा वर्ग और पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता को उनकी मुक्ति हासिल करने का रास्ता दिखाता है, और बुर्जुआ वर्ग और अन्य सभी शोषक वर्गों से छुटकारा पाने और कम्युनिज़्म की प्राप्ति के लिए वीरतापूर्वक लड़ने में उनका मार्गदर्शन करता है। संशोधनवाद – या दक्षिणपंथी अवसरवाद – विचारधारा में एक अंतर्राष्ट्रीय बुर्जुआ प्रवृत्ति है। अध्यक्ष माओ ने विशेष रूप से उल्लेख किया है: **"मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों का निषेध करना और इसकी सार्वभौतिक सत्यता का निषेध करना संशोधनवाद है।"** *(माओ त्से तुङ, सेलेक्टेड रीडिंग्स, "स्पीच एट दि चाइनीज़ कम्युनिस्ट पार्टीज़ नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन प्रोपागैन्डा वर्क", पृ.496)* संशोधनवादी हेर-फेर करके समाजवाद और पूंजीवाद के बीच, सर्वहारा की तानाशाही और बुर्जुआ की तानाशाही के बीच का भेद उड़ा देते हैं। वे क्रांति का झंडा लहराते हैं और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आवरण में खुद को छिपा लेते हैं ताकि, बुनियादी मार्क्सवादी सिद्धांतों को अपने हिसाब से आसानी से विकृत किया जा सके और उन्हें अपने हिसाब से काम में लाया जा सके। वे सबसे पहले और सबसे आगे उन चीजों को बढ़ावा देते हैं जो बुर्जुआ वर्ग को स्वीकार्य हैं और फिर उनको बढ़ावा देते हैं। अक्सर इसी तरह की साज़िशों को संशोधनवादी इस्तेमाल में लाते हैं। सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थिति में संशोधनवादी और भी लुक-छिप कर काम करते हैं, और जनता को धोखा देने और क्रांति को नुकसान पहुंचाने के लिए, झूठी अफवाहें फैलाते हुए और भ्रांत धारणाएं फैलाते हुए, और भी चालाकी से भेस बदल कर रहते हैं।

लेनिन ने बताया है कि वस्तुगत रूप में, संशोधनवादी **"बुर्जुआ वर्ग की ही एक राजनीतिक टुकड़ी है, इसके प्रभाव के प्रबंधकर्त्ता और मजदूर आंदोलन में इसके एजेन्ट हैं।"** *(व्ला.इ. लेनिन* संग्रहीत रचनाएं, खण्ड-21, *"द्वितीय इण्टरनेशनल का पतन", प्रगति प्रकाशन मास्को, 1964, पृ.-247, अंग्रेजी संस्करण)* अवसरवादी तत्व बुर्जुआ वर्ग, और साथ ही साम्राज्यवाद, संशोधनवाद और प्रतिक्रियावाद द्वारा हेर-फेर से प्रयोग में लाए गए साधन हैं। वे सर्वहारा पार्टी के भीतर उनके एजेन्ट हैं। हमारे सभी दुश्मन, अन्दरूनी और बाहरी, अच्छी तरह से जानते हैं कि अन्दर से चौकसी करना अधिक आसान होगा। यह उनके लिए ज़्यादा आसान होगा कि पार्टी के अन्दर प्रवेश कर गए तत्व क्रांति के विध्वंस और सर्वहारा अधिनायकत्व को उखाड़ने के लिए उभरें, बजाय इसके कि ज़मींदार और पूंजीपति स्वयं यह कार्य करें, खासकर उस समय यह बात और ज्यादा लागू होती है जब जमींदारों और पूंजीपतियों को नीचे ठेल दिया जाता है। अगर एक समाजवादी देश में संशोधनवादी राज्य और पार्टी में सत्ता हथियाने में कामयाब हो जाते हैं, तो, इतिहास पीछे लौट सकता है, देश का रंग बदल सकता है, और सर्वहारा वर्ग और अन्य मेहनतकश जनता एक बार फिर से दुखों के सागर में जा सकती है। सोवियत संघ में जब से पार्टी और सरकार में सत्ता हथियाकर ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव गिरोह मंच पर आया है, उसने लेनिन द्वारा स्थापित सर्वहारा अधिनायकत्व के पहले राज्य को सामाजिक-साम्राज्यवादी देश में बदल दिया है। हमारे देश में ल्यू शाओ-ची और लिन पियाओ जैसे कैरियरवादियों, षडयंत्रकारियों, दुरंगी चाल चलने वालों और पश्चाताप रहित पूंजीवादी पथगामियों की प्रकृति भी ऐसी ही थी, हालांकि उनके साथ मामला दूसरा हुआ। चाहे वह सैद्धान्तिक और राजनीतिक मोर्चे हों या उनकी रोजाना की जिन्दगी, वे पूरी तरह बुर्जुआकृत थे, सिर से पैर तक पूरी तरह सड़े हुए। अध्यक्ष माओ ने कहा है: **"संशोधनवाद के सत्ता में आने का अर्थ है बुर्जुआ वर्ग का सत्ता में आना।"**

संशोधनवाद नहीं मार्क्सवाद लागू करना – यह वह बुनियादी पैमाना है जिससे हम सही और गलत कार्यदिशा के बीच विभेद कर सकते हैं। मार्क्सवाद को लागू करने का अर्थ है सर्वहारा के सिद्धान्तों को मानना और सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों को द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के विश्व-दृष्टिकोण से समझना। इसका अर्थ है प्रत्येक ऐतिहासिक काल के वर्गों के बीच सम्बन्धों को वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करके राजनीतिक कार्यदिशा और सिद्धान्तों को विस्तार देना और सर्वहारा वर्ग और जनता के व्यापक हिस्सों को क्रांतिकारी जीत की ओर ले जाना। संशोधनवादी मुखिया शोषक वर्गों के हितों की नुमाइन्दगी करते हैं। आदर्शवादी और आधिभौतिक विश्वदृष्टिकोण रखते हुए वे गलत कार्यदिशा को परिष्कृत और लागू करते हैं और वे सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी उद्देश्य का विध्वंस करने की कोशिश करते हैं। इसलिए मार्क्सवाद लागू करने वाले और संशोधनवाद लागू करने वाले लोगों के एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत वर्ग हित और विश्व-दृष्टिकोण होते हैं, और स्वाभाविक तौर पर वे पूरी तरह से अलग कार्यदिशाएं निकालते हैं जिनके क्रांति के लिए एकदम भिन्न नतीजे होते हैं।

समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक कालखण्ड के लिए अध्यक्ष माओ ने पार्टी के लिए जो बुनियादी कार्यदिशा रखी उसमें मूल बात यह थी कि सर्वहारा अधिनायकत्व को मजबूत बनाना, पूंजीवादी पुनर्स्थापना रोकना और अन्त तक समाजवादी क्रांति को चलाना आवश्यक है। यह कार्यदिशा सर्वहारा और पूरी मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करती है। यह मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र, सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों को प्रतिबिम्बित करती है। अगर हम पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा पर दृढ़ रहें तो अपनी पार्टी और राज्य को समाजवादी मार्ग पर लगातार आगे बढ़ाते जाना सम्भव है। अगर हम इस मार्ग से डिगते हैं, तो हम गलत मार्ग, यानी पूंजीवादी मार्ग पर चल पड़ने का जोखिम उठाते हैं। एकदम इसीलिए समाजवाद के दौर में मार्क्सवाद से संशोधनवाद को अलग करने का पैमाना यही है कि पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को पुष्ट किया गया है या उसे बदल दिया गया है। लिन पियाओ और उसका गिरोह पूंजीपतियों और जमींदारों के दलाल थे, जिन्हें हमारे देश में पहले ही उखाड़ फेंका गया था। वे साथ ही साथ बाहरी साम्राज्यवाद, संशोधनवाद और प्रतिक्रियावाद के भी दलाल थे। इन प्रतिक्रियावादी वर्गों के हितों और इच्छाओं की नुमाइन्दगी करते हुए उन्होंने एक प्रतिक्रांतिकारी संशोधनवादी कार्यदिशा लागू की और एक तख्ता-पलट की योजना बनाई। इसका अपराधी उद्देश्य था पार्टी और राज्य के उच्चतम स्तरों पर सत्ता हथियाना, पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा और राजनीतिक सिद्धान्तों को पूरी तरह बदल डालना, और सर्वहारा की तानाशाही को उखाड़ कर पूंजीवादी पुनर्स्थापना करना। पार्टी के अंदर दो लाइनों के संघर्ष में मूल

(पेज 8 पर जारी)

# दक्षिण एशिया में साम्राज्यवादी दखलन्दाजी साम्राज्यवाद खुद को एक दावानल से घेर रहा है

( विशेष संवाददाता )

दिल्ली। ।। सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर और पेंटागन मुख्यालय पर हुए आतंकवादी हमले ने अमेरिकी साम्राज्यवाद की अगुवाई में समूचे साम्राज्यवादी लुटेरों को मध्य एशिया के रास्ते दक्षिण एशिया में प्रत्यक्ष-परोक्ष फौजी दखलन्दाजी करने का एक कारगर बहाना मुहैया करा दिया। आतंकवाद के खिलाफ विश्वव्यापी युद्ध के नाम पर अपने ही पैदा किये गये भस्मासुर ओसामा बिन लादेन और उसके अल कायदा नेटवर्क तथा उसके मुहाफिज तालिबानों को कुचलने में मिली फौरी कामयाबी के बाद अब इन लुटेरी जमातों को अफगानिस्तान के रूप में एक खूबसूरत फौजी अड्डा मिलता नजर आ रहा है। यहां पैर जमाकर अब दक्षिण एशिया में अपनी आर्थिक-राजनीतिक और फौजी रणनीति को अमल में लाना उन्हें काफी आसान नज़र आने लगा है।

लेकिन दुनिया के चौधरी इस भ्रम में हैं कि उनकी राहें आसान हो गयी हैं। यह सही है कि आज दक्षिण एशिया के कई देशों में शासक वर्ग आज साम्राज्यवादियों की रणनीति में मददगार होने के लिए एक-दूसरे के साथ जमकर होड़ कर रहे हैं और साम्राज्यवादियों के साथ इनके हितों का मेल एक खतरनाक सच्चाई बनकर दक्षिण एशिया के आसमान पर मंडरा रहा है, लेकिन सच्चाई का एक पहलू ऐसा है जो उनके लिए एक डरावना सपना भी बना हुआ है। समूचे दक्षिण एशिया की मौजूदा हुकूमतें आज एक धधकते ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठी हुई हैं...और मुहाने पर दाब लगातार बढ़ता जा रहा है। सच्चाई के ये दोनों पहलू आज एक साथ मौजूद हैं।

जब से भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियां दुनिया के पैमाने पर लागू होना शुरू हुई हैं तभी से अमेरिका और यूरोपीय देशों के तमाम अर्थशास्त्री-समाजशास्त्री अपने शासकों को यह चेतावनियां देते आ रहे हैं कि दक्षिण एशिया में इन नीतियों को लागू करने में काफी सावधानियां बरते जाने की जरूरत है। दक्षिण एशिया में मौजूद भीषण गरीबी और जनअसन्तोष के खतरनाक नतीजों के बारे में ये बुद्धिजीवी जो चेतावनियां जारी करते रहे हैं वे निराधार हैं भी नहीं। लेकिन आज भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका के समाजों में पिछले एक दशक के दौरान जो कुछ घटा है या आज घट रहा है उसे देखते हुए भी साम्राज्यवादी अपने मंसूबों से पीछे नहीं हट सकते। जालिम हुकूमतें न तो बुद्धिजीवियों के मशविरे से चला करती हैं, न ही जनभावनाओं की आवाजें सुनकर अपने रास्ते बदलती हैं। अपनी व्यवस्था का तर्क उन्हें आत्मघाती रास्तों पर आगे ही आगे खींचता ले जाता है।

आज दक्षिण एशिया के अलग-अलग देशों की जनता अपनी तबाही-बर्बादी और सत्ता के दमन के खिलाफ अलग-अलग ढंग से जो प्रतिक्रियाएं व्यक्त कर रही है वे आने वाले कल के संकेत मात्र हैं। नेपाल की जनता अगर अपने आक्रोश को नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में पिछले पांच वर्षों के दौरान विद्रोह के स्तर से ऊपर उठाकर जनक्रान्ति की दहलीज पर पहुंचा चुकी है तो भारत जैसे देश में यह जगह-जगह स्वत:स्फूर्त जनान्दोलनों के रूप में प्रकट हो रहा है। बांग्लादेश में आर्थिक तबाही की शिकार जनता के आक्रोश का फायदा आज भले ही वहां की धार्मिक कट्टरपन्थी ताकतें उठा रही हैं लेकिन कल इस आक्रोश को कोई क्रान्तिकारी दिशा नहीं मिलेगी यह मानना इतिहास की गति को नकारना होगा। इतिहास का यह भी तर्क है कि जब तक एक सही क्रान्तिकारी दिशा नहीं सामने आती तब तक जनता की विद्रोही भावनाएं यहां-वहां उल्टे-सीधे ढंग से अपने को प्रकट करना शुरू कर देती हैं। वंचित आबादियों का युवा हिस्सा बौखलाकर हथियार भी उठाता रहा है और आगे भी उठा सकता है। इतना तय है कि आज समूचे दक्षिण एशिया में जनाक्रोश का जो बारुद इकट्ठा हो रहा है वह कल एक प्रचण्ड विस्फोट की शक्ल लेगा ही। इसे किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता।

भारत में भी हालात इसी ओर आगे बढ़ रहे हैं। देश की सत्ता अगर यह सोचती है कि 'पोटो' जैसे आतंककारी-दमनकारी कानूनों के बूते वह जनाक्रोश से निपट लेगी तो वह उसी भ्रम की शिकार होगी जिसका शिकार तमाम दमनकारी सत्ताएं होती रही हैं। ऐसी सत्ताएं अक्सर यह भूल जाती हैं कि जहां दमन है वहीं प्रतिरोध है। लेकिन सत्ताधारी अपनी आदतों से बाज नहीं आते। उन्हें तो अपनी ही राह पर बढ़ना है।

दक्षिण एशिया में सुलगते यही हालात हैं जो साम्राज्यवाद सहित उनकी तमाम सहयोगी सत्ताओं को एकजुट कर रहे हैं। दक्षिण एशिया के पैमाने पर भी एकजुटता आज साफ नज़र आ रही है और एकजुट होकर वे इस क्षेत्र की जनता पर हमले के लिए आमादा हैं। लेकिन ऐसा करके वे खुद को एक दावानल से घेर ले रहे हैं। आज साम्राज्यवादी और उनके लग्गू-भग्गू थोड़े समय के लिए भले ही अपने मकसद में कामयाब नज़र आ रहे हों, कल इस दावानल से वे खुद को बचा नहीं पायेंगे।

## पार्टी की बुनियादी समझदारी

(पेज 7 से आगे)

टकराव इसी बात का था कि एक पक्ष सर्वहारा वर्ग का तो दूसरा बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था, एक समाजवाद चाहता था, तो दूसरा पूंजीवादी पुनर्स्थापना। कुल मिलाकर यह कहा जाय कि एक पक्ष मार्क्सवाद लागू करता था और दूसरा संशोधनवाद।

मार्क्सवाद पार्टी के अंदर के संघर्ष को समाज के वर्ग-संघर्ष का प्रतिबिम्बन मानता है। हमें पार्टी में दो लाइनों के संघर्ष को वर्ग विश्लेषण की पद्धति का इस्तेमाल करते हुए वर्ग-संघर्ष के मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखना चाहिए। जब तक समाज में वर्ग संघर्ष होंगे, तब तक पार्टी में दो लाइनों के बीच संघर्ष होंगे, तब तक पार्टी में दो लाइनों के बीच संघर्ष में कोई कमी नहीं होगी। हमें पार्टी में संशोधनवादी तत्वों के खिलाफ अपने संघर्ष को वर्गीय अर्थों में देखना चाहिए। अपने संशोधनवाद को लागू करने के अपराधी उद्देश्य को छद्मावरण पहनाने के लिए, लिन पियाओ और उसके सहयोगियों ने पार्टी के दो लाइनों के संघर्ष की वर्ग प्रकृति को विकृत करने का हर संभव प्रयास किया और "उच्चतर और निम्नतर स्तरों" के और "इन शक्तियों और उन शक्तियों" के बीच के तथाकथित अन्तरविरोधों का आविष्कार किया, और पार्टी के संघर्ष को एक व्यक्तिगत सत्ता संघर्ष के रूप में पेश किया। यह सब कुछ अर्थहीन और जहरीला था।

सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच, मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच के संघर्ष में कोई समझौता नहीं होता। हम कम्युनिस्ट द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होते हैं और यह मानते हैं कि एक ऐसे समाज में जहां वर्ग मौजूद हैं, सामाजिक विकास की प्रेरक शक्ति हमेशा वर्ग-संघर्ष होती है और सर्वहारा वर्ग का विकास भी आंतरिक संघर्षों के जरिए होता है। इसलिए हमें न सिर्फ दो-लाइनों के संघर्ष और वर्ग-संघर्ष के वस्तुगत अस्तित्व को पहचानना चाहिए बल्कि, इस प्रक्रिया के विकास का अवलोकन करना चाहिए और सक्रिय तौर पर इन संघर्षों को चलाकर इसकी दिशा तय करनी चाहिए। हमें वर्ग शत्रुओं पर हमले की पहल जरूर लेनी चाहिए, हमें संशोधनवाद की आलोचना करनी चाहिए, और बुर्जुआ व्यक्तिवादियों, कैरियरवादियों और षड्यंत्रकारियों से सत्ता और पार्टी के किसी भी स्तर पर नेतृत्व हथियाए जाने को रोकने के लिए हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। हमें जरूर ही बिना रुके और दृढ़ता के साथ क्रांतिकारी आलोचना करनी चाहिए, राजनीतिक, सैद्धान्तिक और वैचारिक मोर्चों पर संशोधनवादियों के छलावों की सच्चाई को समझना चाहिए और उनके घातक प्रभाव को नष्ट कर देना चाहिए, ताकि हमारी पार्टी, हमारा राज्य हमेशा अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी कार्यदिशा के अनुसार हमेशा प्रगति करता रहे।

क्रमशः

## सुप्रीम कोर्ट ने बाल्को सौदे को सही ठहराया

# थैलीशाहों की हिफाजत में खड़ी न्यायपालिका

( बिगुल प्रतिनिधि )

दिल्ली। बाल्को पर सुप्रीम कोर्ट ने अपना फैसला सुना दिया है, जिसमें बाल्को के बेचे जाने के सरकारी फैसले को सही ठहराया गया है। ज्ञात रहे कि गत वर्ष मार्च माह में जनता की गाढ़ी कमाई और मज़दूरों के खून-पसीने से जनजातीय समूह की जमीन पर खड़े हुए बाल्को कारखाने को सरकार ने पूंजीपतियों को बेचने का निर्णय सुनाया था। स्टरलाइट कम्पनी ने इसी के तहत बाल्को को 51 फीसदी शेयर खरीद लिये थे। इसी 10 दिसम्बर को सुप्रीम कोर्ट ने सरकारी फैसले को सही ठहराते हुए कहा कि न्यायालय सामान्यत: सरकार की आर्थिक नीतियों में दखल नहीं दे सकता है, जब तक कि उसमें संविधान के किसी प्रावधान का स्पष्ट उल्लंघन न हुआ हो, इस फैसले में यह भी कहा गया है कि आर्थिक नीति को जनहित याचिकाओं में चुनौती नहीं दी जा सकती। बाल्को के विनिवेश को सही ठहराने वाला यह फैसला भारतीय न्यायपालिका की अपनी पक्षधरता को एकदम साफ कर देता है।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पैंतालीस करोड़ रुपये के फायदे में चल रही सरकारी कम्पनी बाल्को के 51 फीसदी शेयरों को बेचे जाने पर पूरे देश के मेहनतकश अवाम ने अपना असंतोष जाहिर किया था। बाल्को के बेचने के फैसले के विरोध में जगह-जगह प्रदर्शन हुए थे। बाल्को के कर्मचारियों ने आन्दोलन किया था। आम जनमानस में यह बात थी कि हो सकता है कि जनभावनाओं को देखते हुए सरकार अपने फैसले पर दुबारा विचार कर ले, किन्तु विदेशी पूंजी के घोड़े पर सवार 'स्वदेशी' सरकार ने आखिरकार बाल्को को मुनाफाखोरों के हाथों में सौंप ही दिया। आम जनता और खास तौर पर बाल्को के कर्मचारियों के सामने उम्मीद की एक किरण थी – न्यायपालिका। इस किरण को भी पूंजीवादी न्याय की देवी की आंखों पर लगी काली पट्टी ने सोख लिया।

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले में जनजातीय भूमि के हस्तांतरण पर कहा गया है कि इसका तो सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि इस जमीन पर बाल्को का मालिकाना था और है। जब बाल्को का कारखाना उस क्षेत्र में लगा था तो उस क्षेत्र के निवासियों ने यह सोचा था कि यह उनके उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है। यही सोचकर क्षेत्र के किसानों ने भी अपनी जमीनें दी थीं। उन्हें नहीं पता था कि यह कारखाना तो मुनाफाखोरों की तिजोरी में समा जायेगा। बाल्को की विशालकाय सम्पदा के 51 फीसदी शेयर मात्र 551.5 करोड़ रुपये में स्टरलाइट को बेच दिये गये। आज उस क्षेत्र की किसान और मेहनतकश जनता अपने को ठगा सा महसूस कर रही है।

अपने फैसले में जिस विनिवेश नीति का न्यायालय ने समर्थन किया है, उसमें किस तबके के हितों की रक्षा की है, उसे माडर्न फूड और अन्य बिक चुकी सरकारी कम्पनियों के उदाहरण से समझा जा सकता है। बाल्को के पास करीब दो हजार करोड़ से अधिक की परिसम्पत्तियां हैं। सरकार ने इसे मात्र 551.5 करोड़ रुपये में स्टरलाइट को बेच दिया। स्टरलाइट की गिद्ध दृष्टि भी बाल्को की विशालकाय सम्पत्ति पर ही है। अगर स्टरलाइट बाल्को के कारखाने को चलाना चाहती तो कोई कारण नहीं थे कि यह कारखाना यकायक 164 करोड़ रुपये के घाटे में चला जाता, जबकि विनिवेश के समय यह करीब 45 करोड़ रुपये के लाभ में चल रहा था। दरअसल, मुनाफाखोर करीब 2000 करोड़ की बाल्को की सम्पत्ति हजम कर जाना चाहते हैं इसके लिए वह कर्मचारियों की रोजी-रोटी को छीन लेने और उनके पी.एफ. (भविष्यनिधि) को हड़प जाने को तैयार बैठे हैं। न्यायालय जनता की भावनाओं, कर्मचारियों की पीड़ा और विनिवेश के विगत अनुभवों से परिचित था, फिर भी उसने ऐसा मज़दूर विरोधी फैसला सुनाया।

कहते हैं कानून अंधा होता है। दरअसल, कानून अंधा नहीं होता। सब कुछ देखते हुए अंधे होने का नाटक करता है। इस फैसले ने जहां एक ओर मज़दूर वर्ग को निराश किया है वहीं दूसरी ओर उसने पूंजीपति वर्ग को खुली लूट की छूट दे दी है। पूंजीपति वर्ग इस फैसले से इतना उत्साहित है, जैसे उसे सार्वजनिक उपक्रमों की लूट-खसोट करने का वरदान मिल गया हो। मुनाफाखोरों के लाडले निविवेश मंत्री अरुण शौरी इस फैसले से इतना उत्साहित हुए कि उन्होंने तत्काल भारतीय पर्यटन विकास निगम के होटलों के विनिवेश का संकेत दे दिया, जबकि इसके खिलाफ तमिलनाडु और कर्नाटक में कर्मचारी संघर्षरत हैं। जाहिर है बाल्को सम्बन्धी फैसले ने आम मेहनतकश जनता के हितों की पूरी तरह से उपेक्षा की है और देशी-विदेशी पूंजी की खुली लूट को मान्यता प्रदान की है।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला अप्रत्याशित नहीं था। समाजवाद का मुखौटा उतारकर निजीकरण- उदारीकरण की राह पर चलने का फैसला ले लेने के बाद न्यायपालिका का रुख बदलना ही था। सन् 90 के बाद एक के बाद एक कई मज़दूर विरोधी फैसले आये हैं। श्रम कानूनों में बदलाव किये जा रहे हैं। नये-नये मज़दूर विरोधी कानून बनाये जा रहे हैं। सत्ता लगातार निरंकुश होती जा रही है। कुल मिलाकर कहा जाये तो इस पूंजीवादी व्यवस्था के सारे अंग इस मानवद्रोही व्यवस्था की रक्षा में अपनी पूरी शक्ति लगाये हुए हैं।

बाल्को पर हुए फैसले के बाद की तस्वीर देखिये – जश्न मनाते पूंजीपति, दांत चियारते विनिवेश मंत्री अरुण जैटली, फैसले का गुणगान करता पूंजीवादी मीडिया, सरकार को विदेशी आकाओं से मिल रही बधाइयां और मज़दूर खेमे में एक बेचैनी। तस्वीर साफ है, पूरी कहानी कह देती है। तस्वीर बता रही है कि पूंजीवादी न्यायपालिका थैलीशाहों के हितों की रक्षा करती है। मज़दूर वर्ग के लिये बाल्को फैसला एक सबक भी है कि मज़दूर विरोधी नीतियों की मुखालफत करने के लिए उसे अपने पूरे मज़दूर आंदोलन को नये सिरे से संगठित करना होगा। एक नये इंकलाब की तैयारियों के साथ अपने कारखाना स्तर के आंदोलन को जोड़ना होगा।

माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

# बोझ से छुटकारा पाओ और मशीनरी चालू करो!

नई जीतें हासिल करने के लिए हमें अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं का आह्वान करना चाहिए कि वे बोझ से छुटकारा पाकर मशीनरी को चालू करें। "बोझ से छुटकारा पाने" का अर्थ है अपने दिमाग को चालू करें। "बोझ से छुटकारा पाने" का अर्थ है अपने दिमाग को बहुत सी बाधाओं से मुक्त करना। बहुत सी चीजें हमारे दिमाग का बोझ अथवा हमारे रास्ते की बाधाएं बन जाती हैं, यदि हम अपनी आंखें बन्द करके और उनके गुण-दोष का विवेचन किए बिना उनसे चिपके रहते हैं। कुछ उदाहरण ले लीजिए। गलतियां करने के बाद आपके मन में यह ख्याल आ सकता है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न आ जाए, आपका दामन इन गलतियों के साथ हमेशा बंधा रहेगा, तथा इसलिए आप मायूसी का शिकार हो सकते हैं; अगर आपने गलतियां न की हों, तो आपके मन में यह खयाल आ सकता है कि आप गलतियों से परे हैं, और इस तरह आपके अन्दर घमण्ड पैदा हो सकता है। काम में उपलब्धियां प्राप्त न होने से निराशा और पस्तहिम्मती पैदा हो सकती है, जबकि उपलब्धियां प्राप्त होने से घमण्ड होने और शेखी बघारने की स्थिति पैदा हो सकती है। जिन साथियों को ज्यादा लम्बे संघर्ष का अनुभव नहीं, वे इसके कारण जिम्मेदारियां उठाने से कतरा सकते हैं, जबकि पुराना अनुभव रखने वाले साथी अपने संघर्ष के दीर्घकालीन अनुभव के कारण घमण्ड में चूर हो सकते हैं। मजदूर व किसान साथी अपनी वर्ग-उत्पत्ति के घमण्ड में बुद्धिजीवियों को अपने से नीचा समझ सकते हैं, जबकि बुद्धिजीवी लोग अपने कुछ न कुछ ज्ञान के कारण मजदूर व किसान साथियों को अपने से नीचा समझ सकते हैं। किसी भी विशेष हुनर के कारण अहंकार की प्रवृत्ति और दूसरों को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति पैदा हो सकती है। यहां तक कि उम्र भी घमण्ड का कारण बन सकती है। हो सकता है कि नौजवान लोग अपनी स्फूर्ति और क्षमता के कारण बुजुर्गों को तुच्छ समझें; दूसरी तरफ यह भी हो सकता है कि बुजुर्ग लोग अपने समृद्ध अनुभव के कारण नौजवानों को तुच्छ समझें। अगर गुण-दोष विवेचन न किया जाए, तो इस प्रकार की तमाम चीजें हमारे रास्ते की बाधाएं अथवा हमारे सिर का बोझ बन जाती हैं। ऐसे बोझ को उठाए रहने के कारण ही कुछ कामरेड जनता से अलग रहकर अत्यन्त घमण्डी बने रहते हैं और बार-बार गलतियां करते हैं। अतएव जनता के साथ निकट सम्पर्क बनाए रखने और कम से कम गलतियां करने के लिए एक जरूरी शर्त यह है कि आदमी अपने बोझ की जांच करें, उससे छुटकारा पाए और अपने दिमाग को मुक्त करे। ....."मशीनरी चालू करने" का अर्थ है दिमाग का सदुपयोग करना। यद्यपि कुछ लोग अपने सिर पर बोझ नहीं रखते और उनमें जनता से निकट सम्पर्क बनाए रखने का गुण है, फिर भी वे कोई सफलता पाने में असफल रहते हैं क्योंकि वे ठीक ढंग से सोचना नहीं जानते अथवा अपने दिमाग को अधिक सोचने और गहराई से सोचने के लिए इस्तेमाल करने को तैयार नहीं हैं। दूसरे लोग अपने दिमाग को इस्तेमाल करने से इनकार करते हैं क्योंकि वे ऐसा बोझ लिए रहते हैं जो उनकी बुद्धि को दबा देता है। लेनिन और स्तालिन अक्सर लोगों को सलाह दिया करते थे कि वे अपने दिमाग का इस्तेमाल करें और हमें भी यही सलाह देनी चाहिए। इस यंत्र – दिमाग – का विशेष काम है सोचना। मेनशियस* ने कहा था, "मस्तिष्क का काम चिन्तन है।"[1] उसने मस्तिष्क के काम की ठीक व्याख्या की थी। हमें हमेशा अपने दिमाग को इस्तेमाल करना चाहिए और हर चीज पर बड़ी बारीकी से विचार करना चाहिए। कहावत है "अपने दिमाग पर जोर डालो, तो तुम्हें जरूर कोई न कोई तरकीब सूझ जाएगी।" दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ज्यादा चिन्तन-मनन करने से बुद्धि का विकास होता है। बिना सोचे-समझे काम करने के तरीके से छुटकारा पाने के लिए, जो हमारी पार्टी में गम्भीर मात्रा में मौजूद है, हमें अपने साथियों को इस बात के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे चिन्तन-मनन करें, विश्लेषण करने का तरीका सीख लें और विश्लेषण करने की आदत डालें। हमारी पार्टी में यह आदत बहुत ही कम है। अगर हम बोझ से छुटकारा पा लें और मशीनरी को चालू कर दें, अगर हम हल्के होकर चलें और गहराई से सोचना सीख लें, तो हमारी जीत निश्चित है।

**माओ त्से-तुङ**
'हमारा अध्ययन और वर्तमान परिस्थिति'

*एक चीनी दार्शनिक

## पाब्लो नेरूदा की कविता

**मैं सोचता हूं कि जिन्होंने इतने सारे काम किए**
**उन सबका मालिक भी उन्हीं को होना चाहिए।**
**और जो रोटी पकाते हैं उन्हें वह खानी भी चाहिए!**

**और खदान में काम करने वालों को रोशनी चाहिए!**
**बहुत हो गया अब बेड़ी में बंधे मैले-कुचैले लोगों।**
**बहुत हो चुका अब पीले पड़ चुके मृतको।**
**कोई भी न रहे बग़ैर राज किये।**

**एक भी स्त्री न हो बग़ैर मुकुट के।**
**प्रत्येक हाथ के लिए सोने के दस्ताने हों।**

**अंधेरे के सभी लोगों के लिए सूर्य के फल हों।**

## नारी सभा

### छात्राओं द्वारा हास्टल खाली कराये जाने का विरोध

# सब्र का बांध टूटा, गुस्से का लावा फूटा

(बिगुल संवाददाता)

विगत 12 दिसम्बर की सुबह लखनऊ की सड़कें अचानक सजीव हो उठीं, जब छात्राओं के सब्र का बांध टूट कर सड़कों पर उमड़ पड़ा। चार-चार, पांच-पांच के ग्रुप में करीब साढ़े तीन सौ छात्राएं चुपचाप चली

जा रही थीं। वे ना तो कुछ बोल रही थीं और न ही कोई नारा लगा रही थीं। ये छात्राएं लखनऊ विश्वविद्यालय के कैलाश हॉस्टल की थीं और प्रशासन द्वारा आगामी विज्ञान कांग्रेस के अतिथियों को ठहराने के मद्देनजर हास्टल खाली कराने के निर्णय के विरोध में मुख्यमंत्री को ज्ञापन देने जा रही थीं।

विश्वविद्यालय और जिला प्रशासन अवाक था कि कैसे ये छात्राएं मुख्यमंत्री आवास तक पहुंच गयीं और किसी को कानों-कान खबर तक नहीं हुई। छात्राओं के गुस्से से आतंकित, संशकित जिलाधिकारी और पुलिस प्रशासन ने कोरे आश्वासन देकर उनके गुस्से को शांत कराया और किसी तरह अपनी जान बचाई।

लखनऊ विश्वविद्यालय में आगामी जनवरी में होने वाले विज्ञान कांग्रेस में भावी अतिथियों को ठहराने के लिए जिस तरीके से छात्रों के हास्टल को चन्द महीनों पहले पुलिस फोर्स के दम पर जबरिया खाली कराया गया था, उसी तरीके से छात्राओं के हास्टल को भी खाली कराने की बात प्रशासन की ओर से उठने लगी थी। जिसे शैक्षिक सत्र शुरू होने के काफी बाद में छात्राएं बड़ी मुश्किल से हासिल कर सकी थीं। लिहाजा छात्राओं ने प्रोवोस्ट से इसकी शिकायत की, लेकिन उनके कान पर जूं तक नहीं रेंगी। फिर छात्राओं ने कुलपति को प्रतिवेदन दिया, मगर कुलपति महोदय की भी पलकें नहीं झपकीं। अन्ततः विश्वविद्यालय प्रशासन से नाउम्मीद होकर रातों-रात योजना बनाकर, अगली सुबह चार-चार, पांच-पांच के ग्रुप में छात्राएं कैलाश छात्रावास से मुख्यमंत्री आवास तक पहुंच गयी। तब जाकर विश्वविद्यालय प्रशासन के कान खड़े हुए और जिला प्रशासन हरकत में आया।

सोचने की बात यह है कि इन संघर्षरत छात्राओं को न तो कोई राजनीतिक सांगठनिक प्रश्रय प्राप्त था और न ही उनके पास कोई सुसंगत योजना ही थी। यह एक स्वतःस्फूर्त आंदोलन था, जो अपने अधिकारों पर हमले के खिलाफ प्रतिरोध के रूप में उठ खड़ा हुआ था। इन छात्राओं की तात्कालिक रणनीतिक कुशलता की भी दाद देनी पड़ेगी कि वे बिना नारा लगाये, बिना जुलूस की शक्ल में, टुकड़ियों के रूप में बाहर निकलीं, क्योंकि उन्हें अंदेशा था कि अगर वे एक साथ हास्टल से बाहर निकलने की कोशिश करेंगी तो उन्हें हास्टल के अन्दर ही रोक लिया जाएगा।

फिलहाल, जिलाधिकारी ने छात्राओं को कोरा आश्वासन दे दिया है कि हास्टल खाली नहीं कराया जाएगा। और छात्राओं ने उस पर यकीन भी कर लिया है। लेकिन सभी जानते हैं कि प्रशासन की यह सिर्फ लफ्फाजी है क्योंकि वह आक्रोशित छात्राओं को इसी तरह से शांत करा सकता है। यह भी सच है कि संघर्षरत छात्राओं के जुझारू तेवर और एक्यबद्धता से प्रशासन खौफज़दा है। एक ताजा सूचना के अनुसार कुलपति ने 22 दिसम्बर तक हास्टल खाली कराने के निर्देश दिये हैं। इससे छात्राओं द्वारा किए जा रहे संघर्ष की सामूहिक भावना और अधिक बलवती ही हुई है।

इस लड़ाई में संघर्षरत छात्राओं को कामयाबी हासिल हो या न हो, सवाल सिर्फ कैलाश हास्टल को खाली कराने के निर्णय का नहीं है। बल्कि प्रशासनिक निरंकुशता, मनमानेपन और छात्र विरोधी कदमों का है जो फीस वृद्धि, सीटों में कटौती, वक्त-बे-वक्त हास्टलों के जबरिया खाली कराये जाने के रूप में सामने आ रहा है। व्यापक छात्र युवा असंतोष से निपटने के लिए विश्वविद्यालय और जिला प्रशासन झूठे-वायदों और बन्दरघुड़कियों से अपनी नैया पार लगा देना चाहता है। प्रशासन शायद भूल रहा है कि कुछ महीनों पहले मथुरा और मेरठ के छात्राओं के आंदोलन की आंच अभी मद्धिम नहीं पड़ी है, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्राओं के संघर्ष के ताप को बढ़ाने का ही काम करेगी।

नतीजा जो भी हो, छात्राओं के संघर्ष ने इस बात को साबित कर दिया है कि अपने हकों पर हो रहे कुठाराघात के खिलाफ वे गुस्से से लबरेज हैं और असन्तोष का यह लावा हर जगह फूट रहा है। आज जरूरत है इन लड़ाइयों को एकजुट करने और व्यापक आम आबादी से इसे जोड़ने की। 'दिशा छात्र संगठन' भी छात्राओं के इस आंदोलन को पुरजोर समर्थन कर रहा है।

–नमिता

## आतंकवाद का प्रमुख स्रोत और वाहक साम्राज्यवाद

(पेज । से आगे)

में पहुंच जाते हैं। सोवियत साम्राज्यवादी खेमे के विघटन से दुनिया के पैमाने पर शक्ति सन्तुलन का पलड़ा अमेरिकी अगुवाई में पश्चिमी साम्राज्यवादी मुल्कों की ओर झुक जाता है। दुनिया 'एक ध्रुवीय' लगने लगती है। नवें दशक में उभरे तीखे व्यापार युद्ध सतह पर खत्म होते से दिखने लगते हैं। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की अगुवाई में समूचा पश्चिमी साम्राज्यवादी खेमा एकजुट होकर भूमण्डलीकरण की आक्रामक नीतियों के तहत तीसरी दुनिया के शासक वर्गों पर दबाव बनाकर अपने मनमाफिक नयी विश्व व्यवस्था कायम करने में जुट जाता है। उधर तीसरी दुनिया के शासक वर्ग भी अपनी अर्थव्यवस्थाओं के संकट की जरूरतों-मजबूरियों और इस दबाव की मजबूरियों के नाते अमेरिका और दूसरे पश्चिमी साम्राज्यवादी मुल्कों के साथ समझौते-सहयोग-सहकार के नये रिश्तों में बंधना शुरू करते हैं। कह सकते हैं कि बदले विश्व शक्ति सन्तुलन में तीसरी दुनिया का शासक वर्ग साम्राज्यवादी मुल्कों के साथ अपने रिश्तों को नये सिरे से तय करने की कोशिशों में जुट जाता है।

इसी दौर में हमें यह भी साफ दिखता है कि दुनिया के पैमाने पर जगह-जगह समय-समय पर उठ पड़ने वाले स्वत:स्फूर्त संघर्षों के बावजूद क्रान्तिकारी संघर्षों धारा काफी कमजोर पड़ जाती है। क्रान्तिकारी संघर्षों की रुझान जरूर मौजूद रही है लेकिन यह सच्चाई है कि विश्वस्तर पर जनसंघर्ष कमजोर पड़े हैं। इसी दौर में हमें सामाजिक जनवाद की सीमाएं भी दुनिया भर में एकदम नंगे रूप में दिखायी देती हैं। हमारे देश में सी.पी.आई. और सी.पी.एम. जैसी पार्टियों का व्यवस्था धर्मी चरित्र एकदम नंगे रूप में दिखायी देता है। यही वह दौर है जब भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियां जनता की तबाही-बर्बादी के एक अभूतपूर्व सिलसिले को पैदा करती हैं। हमारे देश में नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से जो तबाही-बर्बादी शुरू हुई है वह इसी सिलसिले की एक कड़ी है। आम मेहनतकश अवाम पर जो कहर बरपा हो रहा है वह किसी महायुद्ध की तबाही से कमतर नहीं है।

और इसी दौर में हम साम्राज्यवादी युद्ध के एक रूप के सामने खुद को खड़ा पाते हैं। इराक पर अमेरिकी हमले से इसकी शुरुआत होती है। इस समूची पृष्ठभूमि को अगर अपनी आंखों के सामने नहीं रखेंगे तो हमारे लिए यह समझना नामुमकिन होगा कि आखिर क्यों पिछली सदी के आखिरी दशक में ही आतंकवाद एक विश्वव्यापी रूझान के रूप में उभरकर सामने आता है।

इतिहास कभी थमता नहीं। वह अपने रास्ते ढूंढ निकालता है। अगर जनक्रान्तियां नहीं होंगी तो साम्राज्यवादी व्यवस्था की विश्वव्यापी अन्धेरगर्दी और जालिम व्यवस्थाओं से त्रस्त लोग अपने आक्रोश को प्रकट करने के कुछ और रास्ते ढूंढ निकालेंगे। फिर चाहे ये रास्ते आत्मघाती ही क्यों न हों। आतंकवाद कोई मनोवैज्ञानिक रोग या मुट्ठी भर सनकी समूहों या लोगों की कारगुजारियां मात्र नहीं है। यह विश्वव्यापी स्तर पर जब समूहों की निराशापूर्ण बौखलाहट व बेबसी का प्रकट होना है। इसके सुनिश्चित सामाजिक आधार हैं। न तो मनोरोग विशेषज्ञों से इसका इलाज किया जा सकता है न ही सत्ता की बन्दूकों से इसे दबाया जा सकता है।

भारत में चाहे कश्मीर का सवाल हो या पूर्वोत्तर राज्यों का – जिस रूप में भी आतंकवाद की मौजूदगी आज दिख रही हो, उसकी जड़ों में वहां की व्यापक जनता की हताशा, निराशा और बेबसी ही है। इनकी सुनिश्चित आर्थिक-राजनीतिक- सामाजिक जड़ें हैं – यह तो बलराज पुरी व कुलदीप नैयर जैसे लोग, तमाम मानवाधिकारकर्मी व प्रगतिशील साहित्यकार- पत्रकार ही नहीं बहुतेरे नौकरशाह तक स्वीकार करते हैं। जम्मू-कश्मीर के सवाल पर शेख अब्दुल्ला के समय तक केन्द्र सरकार से जो टकराव मौजूद था, उसे कोई आतंकवादी हरकत नहीं कहता। यहां तक कि जे.के. एल.एफ. के आन्दोलन को भी जिसके बारे में 'राष्ट्रीय' मीडिया तक यह मान चुका है कि इसे व्यापक कश्मीरी अवाम का समर्थन हासिल है, आतंकवादी आन्दोलन नहीं ठहराया जा सकता। बेशक जैश-ए-मुहम्मद या लश्कर-ए-तोइबा जैसे संगठन आज जो कार्रवाइयां अंजाम दे रहे हैं और उन्हें जिन ताकतों का समर्थन हासिल होता रहता है, उसके पीछे छिपे निहित स्वार्थों को पहचानना जरूरी है। लेकिन क्या उतना ही जरूरी यह नहीं कि कश्मीरी अवाम या पूर्वोत्तर राज्यों की जनता की भावनाओं को भी समझा जाये।

आज पूरी दुनिया में जिस भी रूप में आतंकवाद मौजूद है उसका सबसे प्रमुख स्रोत और वाहक साम्राज्यवाद ही है। आतंकवाद क्या है? अगर हथियारों के बूते अपने मंसूबों को किसी जनसमूह पर जबर्दस्ती थोपना आतंकवाद है तो अमेरिकी हुक्मरान सबसे खतरनाक और संगठित आतंकवादियों के गिरोह हैं। अमेरिकी हुक्मरानों की इन आतंकवादी कार्रवाइयों के बहुतेरे उदाहरण जगजाहिर हैं। इराक पर हमले के दौरान मचायी गयी तबाही और उसके बाद आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण दवाओं के अभाव में मरे पांच लाख से अधिक इराकी बच्चे, अंगोला में 'यूनिटा' विद्रोहियों को हथियारों की लगातार सप्लाई और वहां मचे गृहयुद्ध में हो रहे जनसंहार, वियतनाम में मचाये गये नरसंहार, पनामा के शासकों के जरिये पहले हथियारों की तस्करी कराना और फिर उसके बाद अपने मंसूबों में जरा सी अड़ंगेबाजी करने पर वहां के तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल नोरियेगा का अपहरण एक समय खुद ओसामा बिन लादेन को हथियारों की सप्लाई करना, ट्रेनिंग देना और उसके भस्मासुर बन जाने पर अफ़गानिस्तान पर हमला, फिलिस्तीनी जनों पर अत्याचारों-कत्लेआमों का अन्तहीन सिलसिला रचने वाले इस्रायली शासकों की पीठ पर हाथ रखना, पाकिस्तानी शासक वर्गों की पीठ पर हाथ रखना, आदि-आदि- क्या ये सब आतंकवादी कारगुजारियां नहीं हैं?

और अमेरिकी हुक्मरानों की इन आतंकवादी नीतियों का समर्थक ही नहीं बल्कि एक भरोसेमंद मददगार के रूप में आज भारतीय शासक वर्ग "आतंकवाद के खिलाफ विश्वव्यापी युद्ध" की हुंकार भर रहा है। यह आतंकवाद के बहाने देश की जनता पर राजकीय आतंकवाद थोपने की कोशिश के सिवा और कुछ नहीं।

आतंकवाद का जवाब राजकीय आतंकवाद से नहीं दिया जा सकता। उल्टे यह कई तरीकों से आतंकवाद को ही बढ़ावा देने का काम करता है। राजकीय आतंकवाद का कहर आम जनता पर ही दमन की कार्रवाइयों के रूप में टूटता है। क्रान्तिकारी जनान्दोलनों की कमजोरी की स्थिति में, सही दिशा के अभाव में जनता का एक हिस्सा राजकीय आतंकवाद की प्रतिक्रिया में नये सिरे से आतंकवादी रास्तों की ओर मुड़ जाता है। दुनिया में इसके अनेक उदाहरण मौजूद हैं। हमारे देश में भी पंजाब का उदाहरण हमारे सामने है। पंजाब में खालिस्तानी आतंकवाद को कुचलने के लिए भले ही देश की सत्ता अपनी पीठ ठोंकती फिरे, लेकिन सच यह है कि वहां खालिस्तानी आतंकवाद राजकीय आतंकवाद के दम पर नहीं वहां की जनता के संगठित प्रतिरोध के दम पर ही कुचला जा सका।

इसलिए, हमें आज यह बात अच्छी तरह समझनी होगी कि आज आतंकवाद के नाम पर देशभक्तिपूर्ण उन्माद की नहीं तर्क और विवेक की सबसे अधिक जरूरत है। जिस दौर में जनान्दोलन विघटित हो रहे होंगे और राजसत्ता का कोप जारी रहेगा तो इतिहास रुका नहीं रहेगा। अगर आतंकवाद मुट्ठीभर पाक एजेण्टों की बदौलत पैदा हो रहा होता या सिर्फ "पड़ोसी देशों की शह पर" यह पल रहा होता तो इसे आसानी से कुचला जा सकता था। यह प्रचारित कर अन्धराष्ट्रवादी उन्माद जरूर पैदा किया जा सकता है, और पूंजीवादी मीडिया की भरपूर मदद से देश के भीतर यही कोशिश जारी है, लेकिन आतंकवाद का खात्मा नहीं किया जा सकता।

आतंकवाद चाहे जिस रूप में आज चुनौती बनकर हमारे सामने खड़ा हो – चाहे जनता के किसी हिस्से के आक्रोश की निराशापूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में या राजकीय आतंकवाद के रूप में – इसका मुकाबला सिर्फ और सिर्फ देश की मेहनतकश जनता और तमाम जनतांत्रिक शक्तियों की संगठित शक्ति के जरिये ही किया जा सकता है। इसलिए आम जनता की सभी प्रबुद्ध जमातों को अपनी समूची ताकत और ऊर्जा इसी दिशा में झोंक देनी चाहिए।

## नेपाल सरकार को भारी मात्रा में हथियारों की आपूर्ति...

(पेज । से आगे)

में वहां के शासकों की मददगार बन रही है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में भारत को यह नहीं भूलना चाहिए कि नेपाल सिक्किम या भूटान नहीं है। नेपाल में जिन माओवादियों को आज नेपाली शासक आतंकवादी घोषित कर कुचलना चाहती है वे कल तक खुद नेपाली शासकों की नज़रों में माओवादी विद्रोही थे। इन विद्रोहियों का नेपाल की शोषित-उत्पीड़ित जनता में व्यापक क्रान्तिकारी जनाधार है और नेपाल के 75 में से 60 जिलों में इन्हें व्यापक जनसमर्थन हासिल है, इस सच्चाई को पूंजीवादी मीडिया भी छुपा नहीं सका है। ऐसे में अगर भारत सरकार अपनी हस्तक्षेप की कार्रवाई को आगे बढ़ाते हुए सैनिक भेजने का निर्णय लेती है तो उसे माओवादी क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में सीधे नेपाली जनता की एकजुट शक्ति से टकराना होगा जो घातक साबित हो सकता है।

कई बुर्जुआ अखबारों तक में इस आशय की खबरें छप चुकी हैं कि नेपाल में माओवादी क्रान्तिकारियों को कितना व्यापक जनसमर्थन हासिल है। 4 दिसम्बर को 'राष्ट्रीय सहारा' में अखिलेश सुमन की एक रिपोर्ट में तो यहां तक कहा गया है कि नेपाल में जारी संघर्ष गृहयुद्ध में तब्दील हो सकता है। शाही सेना में विद्रोह की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। रिपोर्ट में कुछ वामपन्थी सूत्रों के हवाले से कहा गया है कि "नेपाली सैनिकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि और माओवादी विद्रोहियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि एक है। नेपाली सेना में मुख्य तौर पर 'मगर', 'गुरुंग', 'क्षत्रिय', तामांग और गोरखा जनजाति की पृष्ठभूमि के लोग शामिल हैं। इसी जनजाति के लोग माओवादी कार्यकर्ता भी हैं। शाही सेना में मुख्य तौर पर 'मगर' जनजाति के लोगों का बाहुल्य है और माओवादियों में भी। ....एक परिवार का एक व्यक्ति अगर सेना में है तो तीन माओवादी कार्यकर्ता हैं। इस दृष्टिकोण से अगर नेपाल सरकार ने शाही सेना को माओवादियों के खलाफ ज्यादा समय तक सख्त कार्रवाई करने का निर्देश दिया तो अपने ही परिवार वालों का कत्लेआम करने की बजाय सैनिकों में बगावत हो सकती है।".

रिपोर्ट में जिस स्थिति का बयान है उससे उत्पन्न होने वाले खतरों के प्रति देश की राजसत्ता के कई सलाहकार फुसफुसा रहे हैं। लेकिन बुर्जुआ राज्यसत्ताएं सलाहकारों की फुसफुसाहटों से नहीं चला करतीं। कुर्सी के अपने तर्क होते हैं और यही तर्क भारतीय शासकों को नेपाल में अपनी टांग अड़ाने को बाध्य कर रहे हैं। यही तर्क तमाम बुर्जुआ राज्यसत्ताएं को भस्मासुरी हरकतें करने की ओर ले जाता है।

अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप करने के आरोप आस-पास के देश भारत पर पहले भी लगाते रहे हैं। अफ़सोस की बात है कि भारत सरकार की ताजा हरकतें इन आरोपों को ही पुष्ट कर रही हैं।

ऐसा नहीं है कि भारत सरकार ने ये हरकतें अनायास कर रही हैं। दक्षिण एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद का खेल खेलने में मददगार बनने की भूमिका तो भारत सरकार पहले ही स्वीकार कर चुकी है। "आतंकवाद के खिलाफ" अमेरिका के "विश्वव्यापी युद्ध" में सहयोग करने को भारत सरकार पहले ही तत्पर हो चुकी है। दरअसल साम्राज्यवादी पूरे दक्षिण एशिया में प्रबल जनविस्फोट की सम्भावनाएं पहले ही सूंघ चुके हैं, इसलिए वे आतंकवाद के नाम पर कुचलने में यहां के शासक वर्गों की पीठ पर हाथ रखे हुए हैं।

नेपाल में जारी संघर्षों के बारे में देश के पूंजीवादी घरानों के अखबारों का रुख भी पूरी तरह भारत सरकार और साम्राज्यवादियों के रुख के अनुकूल हैं। जिस तरह की खबरें छप रही हैं और जो सम्पादकीय लिखे जा रहे हैं, वे मनगढ़न्त हैं और वहां चल रहे जनसंघर्षों को बदनाम करने वाले हैं। नेपाल सरकार, भारत सरकार और साम्राज्यवादियों के सुर में सुर मिलाते हुए ये अखबार चाहे जो कहें नेपाल में माओवादियों के नेतृत्व में जारी संघर्ष आतंकवादी कार्रवाइयां हैं। नहीं आम जनता की सशस्त्र क्रांतिकारी कार्रवाइयां जनता के सशस्त्र प्रतिरोध की कार्रवाइयों को बदनाम करना पूंजीवादी मीडिया का हमेशा से एक प्रमुख धन्धा रहा है और नेपाल के मामले में भी यही धन्धा चालू है।

यह हो सकता है कि नेपाल में जारी दमनचक्र के कारण माओवादियों के आन्दोलन को फौरी तौर पर कुछ नुकसान उठाने पड़ें, कुछ धक्के लगे। लेकिन इतना तय है कि उसे कुचला नहीं जा सकती है क्योंकि यह मुट्ठीभर आतंकवादियों की हरकत नहीं बल्कि नेपाल की समूची शोषित उत्पीड़ित माओवादियों के साथ उठ खड़ी हुई है।

इन सच्चाइयों के मद्देनजर देश के सभी जनतंत्रप्रेमी और न्याय के पक्षधर नागरिकों की यह जिम्मेदारी है कि वे नेपाल में आपातकाल के तहत जारी नेपाली जनता के बर्बर दमन और नेपाल में भारत के हस्तक्षेप के खिलाफ पुरजोर आवाज उठायें।

## साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच भीषण घमासान...

(पेज ।। से आगे)

साम्राज्यवादियों की एकजुट आक्रामकता की चर्चा निराशा के अन्दाज में और हारी हुई मानसिकता से करते हैं। वे उनके भीतर के अन्तरविरोधों को नहीं देख पाते। वे यह नहीं देख पाते की आज कौन सी बातें उन्हें एकजुट होकर दुनिया की जनता के खिलाफ आक्रामक तेवर अपनाने के लिए बाध्य कर रही हैं। साम्राज्यवादियों को जो चीज आज एकजुट कर रही है वह उनकी व्यवस्थाओं का अन्दरूनी संकट है। इन संकटों से निजात पाने के लिए भमण्डलीकरण की जिन नीतियों को वे लागू कर रहे हैं उससे पूरी दुनिया में जनविस्फोटों की आशंकाएं भी उन्हें एकजुट कर रही हैं। वे दुनिया की जनता के दमन के सवाल पर एकजुट हैं, जनसंघर्षों की खबरों के सवाल पर एकजुट हैं। इन मामलों पर तो समूची तीसरी दुनिया की लुटेरी सत्ताएं भी अपने आकाओं के साथ एकजुट हैं। यह एकजुटता भविष्य के भय से पैदा हो रही है। इसलिए भविष्य निराशा का नहीं आशा का है। यह इतिहास का सच है कि निराशापूर्ण दौरों से आशापूर्ण दौरों में संक्रमण शान्तिपूर्ण ढंग से नहीं होता। आज की साम्राज्यवादी-पूंजीवादी दुनिया इसी अशान्ति के मुहाने पर खड़ी है।

# लेनिन के साथ दस महीने

**एल्बर्ट रीस विलियम्स उन पांच अमेरिकी जनों में से एक थे जो अक्टूबर क्रान्ति के तूफानी दिनों के साक्षी थे। वे 1917 के बसंत में रूस पहुंचे। उस समय से लेकर अक्टूबर क्रान्ति तक, वे तूफान के साक्षी ही नहीं बल्कि भागीदार भी रहे। इस दौरान उन्होंने व्यापक जनता के शौर्य एवं सृजनशीलता के साथ ही बोल्शेविक योद्धाओं के जीवन को भी निकट से देखा। लम्बे समय तक वे लेनिन के साथ-साथ रहे। क्रान्ति के बाद जुलाई, 1918 तक उन्होंने दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी ताकतों से जूझती पहली सर्वहारा सत्ता के जीवन-संघर्ष को निकट से देखा।**

**स्वदेश लौटकर रीस विलियम्स ने दो किताबें लिखीं – 'लेनिन: व्यक्ति और उनके कार्य' तथा 'रूसी क्रान्ति के दौरान'। ये दोनों पुस्तकें एक जिल्द में 'अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन' नाम से राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी हैं।**

**हम रीस विलियम्स की पूर्वोक्त पहली पुस्तक का एक हिस्सा 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।**

**– *संपादक***

पिछले अंक से आगे

### 11. लेनिन की निष्कपटता और स्पष्टवादिता

लेनिन की शक्ति का एक रहस्य उनकी उत्कट ईमानदारी थी। वे अपने मित्रों के प्रति सत्यनिष्ठ थे। क्रान्ति के प्रत्येक नये पक्षपाती की वृद्धि से उन्हें खुशी होती, परन्तु काम की स्थिति अथवा भावी संभावनाओं के सब्ज़ बाग़ दिखाकर वे कभी एक व्यक्ति को भी अपने पक्ष में शामिल न करते। इसके प्रतिकूल जैसी वास्तविक स्थिति थी, वे उसे और भी बुरे रूप में प्रस्तुत करने की ओर प्रवृत्त रहते थे। लेनिन के अनेक भाषणों की प्रमुख विषय-वस्तु इस प्रकार की थी: "बोल्शेविक जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं, वह निकट नहीं है – कुछ बोल्शेविक जैसा सोचते हैं, उससे दूर है। हमने ऊबड़-खाबड़ मार्ग से रूस को आगे बढ़ाया है, परन्तु हम जिस पथ का अनुसरण कर रहे हैं, उसमें हमें और अधिक शत्रुओं एवं अकाल का सामना करना होगा। भूतकाल जितना कठिन था, भविष्य में हमें उसकी अपेक्षा और आपके अनुमान से भी अधिक दुष्कर परिस्थितियों का सामना करना होगा।" यह कोई प्रलोभनकारी आश्वासन नहीं है। यह संघर्ष-क्षेत्र में कूदने के लिए प्रेरित करने का परम्परागत आह्वान नहीं है। फिर भी जिस प्रकार इटली की जनता गारीबाल्डी के गिर्द जमा हो गई थी, जिन्होंने यह कहा था कि इस पथ पर आनेवालों का यंत्रणा, कारावास-दण्ड और मौत ही स्वागत करेगी, उसी प्रकार रूसी जनता लेनिन के साथ हो गई। उन लोगों को इस बात से कुछ निराशा हुई, जो यह उम्मीद लगाये थे कि उनका नेता अपने ध्येय की बड़ी सराहना करते हुए संभावित व्यक्तियों को इस कार्य में शामिल होने के लिए प्रेरित करेगा। मगर लेनिन ने इस बात को उनके मन की प्रेरणा पर ही छोड़ दिया।

लेनिन अपने कट्टर शत्रुओं के प्रति भी निष्कपट थे। उनकी स्पष्टवादिता पर टिप्पणी करते हुए एक अंग्रेज का कहना है कि उनका दृष्टिकोण इस प्रकार का था: "व्यक्तिगत रूप से आपके विरुद्ध मेरे मन में कुछ नहीं है। किन्तु राजनीतिक दृष्टि से आप मेरे शत्रु हैं और आपके विनाश के लिए मुझे हर संभव उपाय का इस्तेमाल करना चाहिए। आपकी सरकार भी मेरे विरुद्ध ऐसा ही कर रही है। अब हमें यह देखना है कि किस सीमा तक हम साथ-साथ चल सकते हैं।"

उनके सभी सार्वजनिक भाषणों पर इस निश्छलता की छाप है। झांसा देने, शब्द-जाल फैलाने और ग़लत-सही किसी भी तरीक़े से कामयाबी हासिल करने का व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञों का जो रूप है, लेनिन उससे सर्वथा भिन्न थे। कोई भी इसे महसूस करता था कि यदि वे चाहें, तो भी दूसरों को धोखा नहीं दे सकते। सो भी इसी कारण कि वे स्वयं अपने को भी धोखा नहीं दे सकते थे: उनका मानसिक दृष्टिकोण वैज्ञानिक था और तथ्यों में अटूट विश्वास था।

वे अनेक स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त करते और इस प्रकार उनके पास ढेरों तथ्य जमा हो जाते। वे इनको आंकते, छानबीन और मूल्यांकन करते। तब दांव-पेंच में कुशल नेता की भांति, निपुण समाजशास्त्री और गणितज्ञ की भांति, वे इन तथ्यों का उपयोग करते। वे समस्या की ओर इस प्रकार बढ़ते:

"इस समय हमारे पक्ष में ये तथ्य हैं: एक, दो, तीन, चार..." वे संक्षेप में उनकी गणना करते। "और हमारे विरुद्ध जो तथ्य हैं, वे ये हैं।" उसी प्रकार वे इनकी भी गणना करते, "एक, दो, तीन, चार... क्या इनके अतिरिक्त भी हमारे ख़िलाफ कुछ तथ्य हैं?" वे यह प्रश्न पूछते। हम दिमाग़ पर ज़ोर डालकर कोई अन्य तथ्य खोजने की कोशिश करते, मगर आम तौर पर नाकाम रहते। पक्ष-विपक्ष पर विस्तारपूर्वक विचार करके वे अपनी गणना-अनुमान के साथ उसी प्रकार आगे बढ़ते जैसे गणित के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़ा जाता है।

वे तथ्यों के महत्व का वर्णन करने में विलसन* के सर्वथा प्रतिकूल हैं। विलसन शब्दों के जादूगर की भांति सभी विषयों पर लच्छेदार एवं मुहावरेदार उक्तियों में अपने विचार व्यक्त करते थे, लोगों को चकाचौंध कर उन्हें अपने वश में करते थे और घृणास्पद वास्तविक स्थितियों एवं भोंडे आर्थिक तथ्यों से अनभिज्ञ रखते थे। लेनिन एक शल्यचिकित्सक के तेज़ चाकू की भांति खरी भाषा में वस्तु-स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करते। वे साम्राज्यवादियों की आडम्बरपूर्ण भाषा के पीछे, जो सहज आर्थिक स्वार्थ छिपे होते, उनकी क़लई खोलते। रूसी जनता के नाम उनकी उद्घोषणाओं को स्पष्ट व नग्न रूप में प्रस्तुत कर देते हैं और उनके सुखद-मधुर वादों के पीछे शोषकों के कुत्सित तथा लोलुप हाथों का भण्डाफोड़ करते।

वे जिस प्रकार दक्षिणपंथी लफ्फाजों के प्रति निर्मम थे, उसी प्रकार वामपंथी लफ्फाजों के प्रति भी कठोर थे, जो यथार्थ से मुंह मोड़कर क्रान्तिकारी नारों का सहारा लिया करते हैं। वे "क्रान्तिकारी-जनवादी वाग्मिता के मीठे जल में सिरका और पित्तरस मिला देना" अपना कर्त्तव्य मानते थे और भावुकतावादियों एवं रूढ़िवादियों का मर्मबेधी उपहास उड़ाया करते थे।

जब जर्मन फ़ौजें लाल राजधानी की ओर बढ़ रही थीं, तो स्मोल्नी में रूस के कोने-कोने से प्राप्त आश्चर्य, आतंक और घृणा की भावनाएं व्यक्त करने वाले तारों का अम्बार लग गया। इन तारों के अन्त में इस प्रकार के नारे लिखे होते, "अजेय रूसी सर्वहारा वर्ग ज़िन्दाबाद!", "साम्राज्यवादी लुटेरे मुर्दाबाद!", "हम अपने रक्त की अन्तिम बूंद बहाकर क्रान्तिकारी रूस की राजधानी की रक्षा करेंगे!"

लेनिन इन तारों को पढ़ते और उसके बाद उन्होंने सभी सोवियतों को एक ही आशय का तार भिजवाया, जिसमें कहा गया था कि तारों द्वारा पेत्रोग्राद क्रान्तिकारी नारे भेजने की जगह फ़ौजें भेजें, स्वेच्छा से सेना में भर्ती होनेवालों की सही संख्या, हथियारों, गोला-बारूद एवं खाद्य-सामग्री की वास्तविक स्थिति की सूचना दें।

*डब्ल्यू. विलसन – 1913-1921 तक सं. रा. अमरीका के राष्ट्रपति।

क्रमश:

## साम्राज्यवादी लुटेरों की ऊपरी एकता लेकिन अन्दरखाने में तकरार

अमेरिकी साम्राज्यवाद की अगुवाई में जब से भमण्डलीकरण की आक्रामक नीतियों का दौर शुरू हुआ है तब से ऊपरी तौर पर यह दिख रहा है कि सभी साम्राज्यवादी देश पूरी तरह एकजुट होकर तीसरी दुनिया के शासक वर्गों पर अपना दबाव बनाये हुए हैं और उनके बीच आपसी झगड़े-टण्टे खत्म हो गये हैं। यह सिर्फ ऊपरी सच्चाई है। अन्दरखाने की बात यह है कि उनके बीच भीषण घमासान छिड़ा हुआ है। लेकिन अन्दरखाने की बात अभी मुखर होकर ऊपर बहुत ज्यादा नहीं दिखाई-सुनायी पड़ रही है इसलिए यह समझ लिया जाता है कि लुटेरों की यह बिरादरी पूरी तरह एकजुट है। साम्राज्यवादियों की स्थायी एकता के बारे में सोचना उसी तरह है जैसे कोई यह सोचे कि लुटेरे लूट के माल का बंटवारा प्रेमपूर्ण ढंग से और भाईचारे के साथ करते हैं।

अगर सिर्फ ऊपर-ऊपर की बातों पर ही फटाफट नतीजा न निकाल लिया जाये तो ऐसी खबरें अक्सर साम्राज्यवादी-पूंजीवादी मीडिया से भी छन-छनाकर चली आती हैं जिससे यह साफ पता चलता है कि 'लुटेरों का भाई-चारा जिन्दाबाद' जैसे नारों में साम्राज्यवादी बिल्कुल यकीन नहीं रखते।

अमेरिका द्वारा ।। सितम्बर की घटना के बाद शुरू किये गये "आतंकवाद के खिलाफ विश्वव्यापी युद्ध" में यूरोपीय देशों की जो एकजुटता दिखायी दे रही थी उसके भीतर मौजूद दरारें बिल्कुल साफ नज़र आने लगी हैं। अफ़गानिस्तान पर हमले में मिली फौरी कामयाबियों से उत्साहित होकर अमेरिकी राष्ट्रपति, विदेशमंत्री और रक्षा मंत्री पिछले दिनों लगातार यह बयान देते रहे हैं कि अफ़गानिस्तान के तालिबानी शासन, ओसामा बिन लादेन और उसके अल कायदा नेटवर्क के खिलाफ जारी मौजूदा अभियान अमेरिकी अगुवाई में चल रहे युद्ध की बस शुरुआत है। पेंटागन के सूत्रों से ये खबरें लगातार आती रही हैं आतंकवादी संगठनों और गतिविधियों को मदद देने वालों की सूची में इराक, सोमालिया, सूडान और यमन जैसे देश भी शामिल हैं। लेकिन "आतंकवाद के खिलाफ इस विश्वव्यापी युद्ध" में अब यूरोपीय देश अमेरिकी रणनीति के साथ पूरी तरह नहीं खड़े हो सकते, इसके साफ संकेत मिलने लगे हैं।

पन्द्रह देशों के समूह यूरोपीय संघ के नेताओं ने पिछले 14 दिसम्बर को अमेरिका को चेतावनी दी कि वह अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की सहमति के बिना आतंकवाद के खिलाफ अन्तरराष्ट्रीय युद्ध को अफ़गानिस्तान के बाहर न फैलाये। यूरोपीय देशों की इस चेतावनी का अर्थ यह नहीं कि अफ़गानी जनता पर इस युद्ध के कहर को देखकर इनके हुक्मरानों का दिल पसीज गया है। इसका कारण यह है कि दुनिया पर अमेरिकी प्रभुत्व विस्तार का आगे बढ़ते जाना खुद उनके आर्थिक-राजनीतिक और फौजी मंसूबों के खिलाफ है।

साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच की यह दरार पहले भी दिखती रही है। जब भी कोई युद्ध लम्बा खिंचने लगता है तो आपसी मनमुटाव व नाराजगी के स्वर उभरने लगते हैं। इराक युद्ध जब लम्बा खिंचने लगा तो अमेरिकी गठबन्धन में दरारें साफ उभर आयी थीं। इराक पर आर्थिक प्रतिबन्धों के सवाल पर भी अमेरिका, फ्रांस व जर्मनी के बीच तीखे मतभेद उभर आये हैं। यह सही है आज अमेरिका और यूरोप (विशेषकर फ्रांस व जर्मनी) तथा जापान के बीच पिछली सदी के नवें दशक में दिखायी दिया व्यापार युद्ध आज मुखर रूप में नहीं दिख रहा है, लेकिन यह लगातार मौजूद है और आज सिर्फ इसके रूप बदल गये हैं। लेकिन इस धरातल पर मतभेद मौजूद हैं। इराक और फिलिस्तीन के सवाल पर आज जो अन्तरविरोध दबे स्वर में प्रकट होते रहते हैं वे आने वाले समय में मुखर रूप में सामने आयेंगे।

एक दूसरे धरातल पर भी साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच अन्तरविरोध मौजूद है जो आज भले ही उतना मुखर न दिखे लेकिन कल इसका मुखर होना लाजिमी है। सोवियत खेमे के विघटन के बाद आर्थिक तबाही झेल रहा रूस नये सिरे से उठकर साम्राज्यवादी होड़ में शामिल होने की सम्भावनाएं प्रकट करने लगा है। अमेरिकी राष्ट्रीय मिसाइल सुरक्षा प्रणाली के खिलाफ वह लगातार आवाज उठाता नजर आ रहा है। आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी अभियान का सवाल हो या इराक-फिलिस्तीन का सवाल – इन पर वह पूरी तरह अमेरिकी नीतियों के साथ खड़ा होने की बजाय अपनी अलग मुद्रा दिखाता रहा है। रूस अपने स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रकुल के सहयोगियों के साथ मिलकर एक क्षेत्रीय प्रभाव क्षेत्र विकसित कर अमेरिका व अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी मुल्कों के साथ खुलकर होड़ में उतरने की तैयारियों में जुटा हुआ है।

अक्सर सतह की सच्चाइयों को देखकर ही बहुतेरे बुद्धिजीवी

(पेज 10 पर जारी)

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP.349.2000

### उ.प्र. विधानसभा चुनाव में भाजपा का चुनावी कार्ड

# देशभक्ति के भरोसे या दोनों के भरोसे

**( बिगुल प्रतिनिधि )**

लखनऊ। उत्तर प्रदेश के आने वाले विधानसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी का चुनावी कार्ड क्या हो, इसको लेकर उसके रणनीतिकार अभी भी उलझन में पड़े हुए हैं जबकि चुनाव अब सिर्फ दो महीने दूर रह गये हैं। इसलिए एक साथ वे कई विकल्पों को खोले हुए हैं। उनके चुनावी पिटारे में देशभक्ति का मसाला भी है, राम मन्दिर मुद्दे का चमत्कार भी है और जरूरत पड़ने पर इन दोनों का सुन्दर घालमेल करने का फार्मूला भी है।

हालांकि पिछले 13 दिसम्बर को भारतीय संसद पर हुए आतंकवादी हमले ने देश की सत्ता के लिए जो भी चुनौती पेश की हो, लेकिन भाजपा के चुनावी रणनीतिकारों का रास्ता जरूर आसान बना दिया है। फिलहाल ऐसा लग रहा है कि भाजपा उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में देशभक्ति की चुनावी हुण्डी को ही प्रमुखता से भुनाएगी। पार्टी के आला नेतृत्व से लेकर प्रादेशिक नेतृत्व तक के जो बयान अब आ रहे हैं उससे यही संकेत मिल रहे हैं।

13 दिसम्बर की घटना के बहाने भाजपाई नेतृत्व देश भर में और खासकर उत्तर प्रदेश में उसी तरह का अन्धराष्ट्रवादी जुनून पैदा करने में जुट गया है जैसा कारगिल के समय किया गया था। केन्द्र सरकार अमेरिका की तरह "पाकिस्तान स्थित आतंकवादी ठिकाने" पर हमला करे या न करे, लेकिन वह चुनाव तक युद्ध और देशभक्ति का उन्माद पैदा करने की लाइन पर चलकर ही विधानसभा चुनाव को सरपोटना चाहती है।

पहले पोटो के जरिये यह करने की कोशिश हो रही थी। आडवाणी-जेटली-शौरी से लेकर राजनाथ सिंह तक जार्ज बुश की भाषा में ललकार रहे थे कि या तो आप पोटो के साथ हैं या आतंकवाद के साथ। लेकिन पोटो के खिलाफ संसद में प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस से लेकर कई अन्य विपक्षी दलों की आवाजों के साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में जनतांत्रिक लोगों की आवाजों के कारण भाजपा नेतृत्व इस ललकार के असर को लेकर बहुत आश्वस्त नहीं हो पा रहा था। इसीलिए राम मन्दिर का विकल्प भी वह खुला छोड़े हुई थी। 'अति पिछड़ा' कार्ड भी इसीलिए खेला जा रहा था।

राम मन्दिर को लेकर विश्व हिन्दू परिषद के नेताओं की सिंह गर्जना को विकल्पों को खुला रखने की इसी भाजपाई रणनीति का हिस्सा समझना कोई कठिन बात भी नहीं है। विहिप द्वारा मार्च तक मन्दिर निर्माण पूरा कर लेने (गौर किया जाना चाहिए कि उ.प्र. विधानसभा चुनावों को मार्च तक ही सम्पन्न हो जाना है) और केन्द्र सरकार द्वारा अयोध्या में यथास्थिति बनाये रखने की नूरांकुश्ती संघ परिवार की रणनीति का हिस्सा। यह रणनीति भी अब इतनी उजागर हो चुकी है कि एक आम राजनीतिक समझ रखने वाला आदमी भी इसे समझ चुका है, लेकिन जब चुनावी विकल्प सीमित हों तो और किया भी क्या जा सकता है।

देश की चुनावी राजनीति के खिलाड़ियों के बीच यह 1980 के चुनावों के समय से ही यह सहमति बन चुकी है कि चुनाव जनहित के मुद्दों पर नहीं लड़े जायेंगे। इसीलिए तब से सभी चुनाव गैरमुद्दों पर ही लड़े गये हैं और यह चुनाव भी इसका अपवाद नहीं होगा। इसीलिए इस चुनाव में बढ़ती बेरोजगारी मुद्दा नहीं बनेगा, छंटनी-तालाबन्दी मुद्दा नहीं बनेगा, श्रम क़ानूनों में बदलाव मुद्दा नहीं बनेगा। देश के औद्योगिक जगत में छायी भयंकर मन्दी मुद्दा नहीं बनेगा, जनतांत्रिक अधिकारों पर सत्ता के बढ़ते हमले मुद्दा नहीं बनेगा। यानी, भूमण्डलीकरण की नीतियों से आम जनता की तबाही-बर्बादी मुद्दा कत्तई नहीं बनेगा। जबकि काबुल-कन्धार की ध्वस्त सड़कों और खण्डहरों को तो नापा जा सकता है लेकिन इस तबाही-बर्बादी की नाप-जोख करना सम्भव नहीं।

देश की चुनावी राजनीति का यह संकट अकेले भाजपा का संकट नहीं है। यह राजनीतिक संकट अर्थनीति के संकट के ही अभिव्यक्ति है। जिस तरह आर्थिक संकट से उबरने के नाम पर लागू की गयी नई आर्थिक नीतियों पर सभी चुनावी दलों की रज़ामन्दी है उसी तरह इस पर भी कि जनता के बुनियादी मुद्दों को उठाकर सुलगती आग को हवा न दी जाये। इसीलिए गैर मुद्दों को मुद्दा बनाकर चुनावी दंगल में जोर आजमाइश करने पर सभी रज़ामन्द हैं। हां, अपने-अपने वोट बैंक के लिहाज से मुद्दे भले अलग-अलग हों।

बहरहाल, अब यह साफ होता जा रहा है कि भाजपा उ.प्र. चुनाव मुख्यत: देशभक्ति के जुनून के सहारे लड़ेगी। और भी ऐसी वैसी नहीं – सीमा पर के दुश्मनों के खिलाफ अग्निमुखी बाण की आड़ में मुख्य नारा यह कि अमेरिकी साम्राज्यवाद और दूसरे पश्चिमी बिरादरों के तलुवे चाटो। साम्राज्यवाद की शह पर दक्षिण एशिया में बड़भय्यापन दिखाओ। इस अंधराष्ट्रवादी बड़भय्यापन में अगर हिन्दुत्ववादी राष्ट्रवाद की छौंक लगा दी जाये तो चुनावी व्यंजन आनन्ददायी बन सकता है। यही व्यंजन जनता के सामने परोसकर भाजपा उ.प्र. में फिर से राजपाट सम्हालने के मंसूबे बांध रही है। उ.प्र. का दुर्भाग्य यह कि मध्यवर्ग के एक हिस्से को यह व्यंजन आजकल लुभावना भी लग रहा है।

एक तरफ प्रदेश की चुनावी राजनीति का यह गन्दा खेल जारी है दूसरी तरफ जनता के सामने कोई मजबूत क्रान्तिकारी विकल्प मौजूद नहीं है। और यह स्थिति तब तक मौजूद रहेगी जब तक मेहनतकश अवाम के आगे बढ़े हुए हिस्से आगे बढ़कर प्रदेश की राजनीति की कमान मेहनतकशों के हाथों में ले लेने के लिए तैयारी नहीं करते। •

---

**बेताल उवाच**

# "आज मैं भी आचार संहिता तोड़ूंगा राजन!"

विक्रम बेताल को कंधे पर लाद कर जैसे ही आगे बढ़ा बेताल ठठा कर हंस पड़ा और विक्रम से बोला –

"राजन तू कितना कर्तव्यपरायण है, कितना नियमबद्ध है। तू हमेशा जंगल आता है, मुझे कंधे पर लादता है। नियम से मुझे लेकर चलता है। नियम से मैं तुझसे सवाल पूछता हूं। अन्त में नियम से मैं वापस उसी डाल पर लटक जाता हूं। और पुनः तू...। तू इतना नियमबद्ध क्यों है? तू अपने जनप्रतिनिधियों से क्यों नहीं सीखता।"

**विक्रम** – "जनप्रतिनिधियों से. ..। तू कहना क्या चाहता है? लोकतंत्र की अपनी मर्यादाएं हैं जिसकी रक्षा करना सबका काम है।"

**बेताल** – "लोकतंत्र तो संसदीय ढांचे की रीढ़ की हड्डी है। सच के बिना देश चल सकता है, अहिंसा के बिना देश चल सकता है, मूल्यों-आदर्शों-विश्वास-ईमानदारी के बिना देश चल सकता है, पर लोकतंत्र के बिना नहीं। लोकतंत्र उसकी संसद-विधानसभाओं व जनप्रतिनिधियों के बिना नहीं। और संसद-विधान सभाएं बगैर हो हल्ला, कुर्सी पटक, माइक झटक, धोती खींच संस्कृति के बगैर नहीं।"

**विक्रम** – "भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहां वाद-विवाद के जरिए प्रश्नों को हल करने की परम्परा रही है। शुरुआती दो दशक तो मर्यादाओं के यहां कीर्तिमान स्थापित हुए। लेकिन इधर कुछ अमर्यादित और अशोभनीय घटनाएं बढ़ी हैं।"

**बेताल** – "कहीं कुछ अमर्यादित नहीं है, संसदीय प्रणाली में यही सब तो शोभनीय है। बगैर गला फाड़कर चिल्लाए, बिना धक्का-मुक्की के, शोर-शराबे, गाली-गलौज के अपनी बात ऊपर कैसी रखी जा सकती है? अपनी-अपनी "विशिष्ट" कलाओं के माहिरों की उपस्थिति आखिर दर्ज कैसे होगी?"

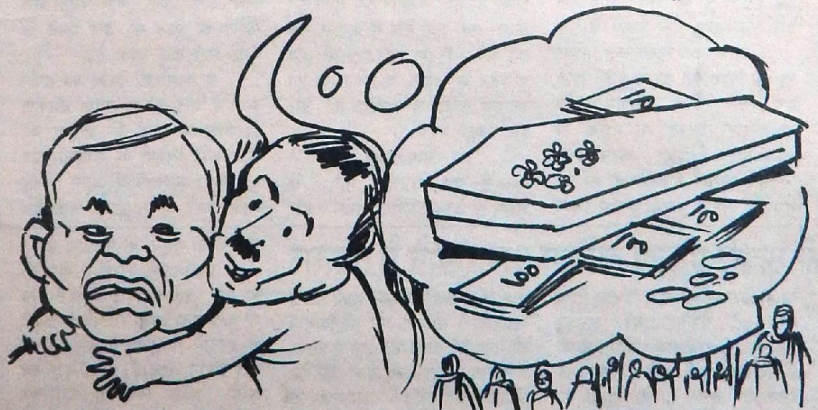



**विक्रम** – "हम मानते हैं कि संसद और विधान मण्डल की साख और गरिमा में पिछले कुछ दशकों से निरंतर गिरावट आयी है। इसलिए अनुशासन, शालीनता व मर्यादा बनाए रखने के लिए आम राय से एक आचार संहिता बनायी गयी है, जिसे तोड़ना दण्डनीय होगा। यह सभी सांसदों-विधायकों पर लागू होगा।"

**बेताल** – "बहुत खूब। 'आचार संहिता' बनाना तो बड़ा ही पवित्र काम है। कागजों में तो ये होना ही चाहिए। लेकिन..."

**विक्रम** – "लेकिन क्या..."

**बेताल** – "तेरे जनप्रतिनिधियों में आचार संहिता बनाने और तोड़ने की जबर्दस्त कुशलता है। देख 25 को आचार संहिता बनी। सत्ता पक्ष और विपक्ष ने जोर-शोर से इसमें भागीदारी की। उपराष्ट्रपति से लेकर वर्तमान व पूर्व प्रधानमंत्रियों, मुख्यमंत्रियों से लेकर जन प्रतिनिधियों तक ने इसमें हिस्सेदारी की। नियम बना और अगले ही दिन संसद में इसकी धज्जियां उड़ गयीं। 1992 में भी ऐसा ही हुआ था और लोकतंत्र का बेताल उसी डाल पर पहुंच गया था।"

**विक्रम** – "कुछ खामिया हैं जिसे दूर करने का प्रयास चल रहा है।"

**बेताल** – "खामियां। कैसी खामियां। प्रधानमंत्री से लेकर नीचे के जनप्रतिनिधि तक सभी तो कर्तव्य परायण हैं। प्रतिस्पर्धा के इस दौर में उनमें कितनी शानदार प्रतिस्पर्धा है। कमीशनखोरी की प्रतिस्पर्धा, घोटालों की प्रतिस्पर्धा, लूट की प्रतिस्पर्धा, इफ्तार पार्टियों की प्रतिस्पर्धा, सदन में ज्यादा बुलन्दी से अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने की प्रतिस्पर्धा...। आचार संहिता बनाकर वे उसे तोड़ेंगे नहीं तो फिर नयी आचार संहिता बनेगी कैसे राजन।"

**विक्रम** – "तू आज कुछ बहक गया है बेताल।"

**बेताल** – "आज मैं तेरे जनप्रतिनिधियों से सीखने की कोशिश कर रहा हूं। अरे, उसी 'सेट रुटीन' पर क्या चलना राजन। वही तो मैं तुझसे भी कह रहा हूं तू क्यों नहीं थोड़ा बहकता? अपने मंत्रियों-सांसदों से क्यों नहीं सीखता?"

**विक्रम** – "तू जनतंत्र का मजाक उड़ा रहा है।"

**बेताल** – "नहीं, मैं तो जनतंत्र का गुणगान कर रहा हूं। जनतंत्र में सबको बोलने की आजादी है इसलिए जनप्रतिनिधि खूब बोलते हैं, उछल-कूद कर बोलते हैं। कुर्सी तोड़कर, माइक से सर को फोड़कर, पेपरवेट को फेंककर बोलते हैं। बोलने की सारी कसर इसलिए वे निकाल देते हैं कि जनता को न बोलना पड़े। अब उस दिन की ही देख राजन। लोकसभा अध्यक्ष बेहद नाराज थे। बार-बार सदस्यों को याद दिला रहे थे कि वे कल अमर्यादित व्यवहार न करने के लिए सभी सहमत हुए थे आज ही उसका उल्लंघन कर रहे हैं। शायद अध्यक्ष महोदय ही मार्यादा भूल गये थे। संसदीय मर्यादा तो यही है। उस दिन भी सत्ता पक्ष और विपक्ष ने वैसा ही आचरण प्रदर्शित किया जैसा संसदीय परम्परा है। उन्होंने तो आचार संहिता तोड़कर अपने जनतांत्रिक मूल्यों की ही रक्षा की है।"

**विक्रम** – "तू आखिर चाहता क्या है?"

**बेताल** – "मेरा मन आज बहुत लरज रहा है। मैं भी आज तेरी आचार संहिता को भंग करुंगा। मैं आज तेरे कन्धे से उतरने वाला नहीं हूं। मैं आज पुनः अपनी डाल पर नहीं लटकूंगा।"

यह कहते हुए बेताल देर तक ठहाका लगाता रहा।

– राम अवतार

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।